विष्णु प्रभाकर

सामयिक प्रकाशन
3543, जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 (भारत)
फ़ोन : (011) 3282733 ✤ 2262499 ✤ 2175472

आखिर क्यों

विष्णु प्रभाकर

ISBN : 81-7138-000-X

मूल्य : सौ रुपये

प्रकाशक : जगदीश भारद्वाज
सामयिक प्रकाशन
3320–21 जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग,
दरियागज, नई दिल्ली–110002 (भारत)

संस्करण : 2001

कलापक्ष : चेतनदास

शब्द–संयोजक : कल्याणी कम्प्यूटर सर्विसेज
जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली–2

मुद्रक : अजित प्रिंटर्स
मौजपुर, दिल्ली–110053

AAKHIR KYON (Short Stories)
by VISHNU PRABHAKAR Price : Rs 100 00

Published By . SAMAYIK PRAKASHAN
3320-21 Jatwara, Netaji Subhash Marg,
Daryaganj, New Delhi - 110002 (INDIA)
Te (011) 3282733 3?707 5 3270716

उन अनाम निर्दोष शहीदों के नाम
जिन्होंने इस समस्या की बलिबेदी पर
प्राण विसर्जित कर दिये
और
उन चिन्तकों के नाम भी
जिन्होंने इस समस्या की गहराई में
जाने की कोशिश की।

भूमिका

इस सग्रह मे जो कहानियां संकलित हुई है, उनमें से लगभग सभी किसी न किसी रूप मे पहले भी प्रकाशित हो चुकी हैं। उनमे से बहुत सग्रह अब अप्राप्य है। इसलिए इस सग्रह की आवश्यकता अनुभव की गई।

इन पंद्रह कहानियो में पांच कहानियो का सबध सीधे भारत विभाजन की त्रासदी से है और वे सारी कहानियां सत्य पर आधारित हैं। मैं नहीं जानता उनके पात्र अब कहा है। पर एक दिन उनसे या उनके रिश्तेदारों से मेरी भेंट निश्चय ही हुई थी। मैं स्वय नही जानता कि मै इस समस्या की गहराई मे जा सकता या नहीं। अभी पिछले दिनों हिंदू-मुसलमान के स्थान पर हिंदू और सिखों ने उसी समस्या को बडे भयानक रूप में हमारे सामने उभार और स्पष्ट रूप से इस ओर संकेत किया कि हिंदू और मुसलमान या हिंदू और सिख होना, इस समस्या के मूल में नही है। मूल मे है मानव-स्वभाव की विरूपता। मूल रूप में समस्या जो प्रश्न उठाती है वह यही है कि आखिर मनुष्य लडता क्यों है? क्या मात्र धर्म के नाम पर या धर्म को बहाना बनाकर बहुरूपी सत्ता को हत्याने की चाह के रूप में। इस संग्रह की अतिम आठ कहानिया कहीं न कहीं इस प्रश्न को उभारने के प्रयत्न में लिखी गई हैं। वे भी सब सच्ची कहानियां हैं। कुछ अक्षरशः सच्ची है और कुछ सत्य घटनाओं के आधार पर लिखी गई हैं। कुछ कहानियो में मै स्वय कभी एक पात्र हू। जैसे—'अधूरी कहानी' मे और 'मुरब्बी'। 'सफर का साथी' का प्रत्यक्ष दृष्टा भी हूं मै। उनका संबंध किन्हीं दगों से नही है, बल्कि युग-युग से चली आई उन कथाओं से है जिन्होने आदमी को आदमी के पास लाने की कोशिश के बजाए उसे निरंतर दूर करने की कोशिश की। गले लगाकर भी गला काटने की चाह उसमे बराबर बनी रही।

'आखिर क्यों' इस कहानी मे शकर इसी बात को लेकर परेशान है और इसीलिए वह उसको मारने आने वाले हत्यारे को अपने व्यवहार से सोचने को विवश कर देता है। निश्चय ही कुछ मित्र हृदय परिवर्तन की बात को मेरी कमजोरी मानेगे। उस दोष को स्वीकार करते हुए मैं इतना ही कहूगा कि न सही वह एकमात्र रास्ता, पर जो भी रास्ता है वह उसी के आसपास से होकर जाता है।

'अधूरी कहानी' का वह मासूम अहमद हिंदू-मुसलमान के बीच के फासले को नही देख पाता। उसे तो बस अपने दोस्त की हमदर्दी पर नाज है। 'मुरब्बी' कहानी मे भी वही दोस्ती दो निर्मल हृदय बूढो के बीच फलती-फूलती है। नितांत एक बालक के रूप मे मैंने उन दृश्यों को देखा है, और तभी से मेरे मन मे यह प्रश्न बार-बार उभरा है, 'आखिर क्यो हम अपनी दुर्बलताओं को मत और मजहब के पर्दे में छिपा लेते है।'

'मेरा बेटा' कहानी मे यही प्रश्न तो उभर कर आता है। मजहब बदल जाने के

बाद क्या रिश्ते भी बदल जाते है? कितनी कच्ची नीव पर खडे हैं वे रिश्ते। 'इतनी सी बात' कहानी की घटना बहुत पुरानी नही है। लेकिन वह इस बात का प्रमाण अवश्य है कि स्थापित स्वार्थो की गुजल मे निकलने का रास्ता है। असलम जावेद का यदि अपना मजहब याद आ जाता तो विनीता की सहायता कैसे कर पाता। उसे तो याद आया बस इंसानी रिश्ता ही। इसी इसानी रिश्ते की खोज करती हैं ये कहानियां।

'सफर के साथी' इसी इंसानी रिश्ते की बुनियाद पर खडी हुई है और मै साक्षी हू इस कहानी की घटना का। तब मेरे मन मे कितनी खुशी उमडी थी, मै कह नही सकता और मुझे विश्वास हो गया था कि इसानी रिश्ते सबसे ऊपर हैं। व ही खून को बादलों के निर्मल और प्राणदायी पानी मे बदल सकते हैं। 'आज होली है' यह कहानी भी यही प्रमाणित करती है कि इंसानी रिश्ते सब समस्याओ से ऊपर है। काश हम इस सत्य को पहचान सके तो 'ये बधन' कहानी की समस्याए हमारे सामने आएगी ही नही।

अपनी कहानियो के बारे मे मैंने शायद ही कभी कुछ कहा हो। यहा भी मैंने उनकी पृष्ठभूमि ही बताई है। मैने हमेशा माना है कि मत-मातातर और राजनीति इनसे बचकर अगर हम सोचेंगे, तो शायद रास्ता नजर आएगा। वैसे रास्ता तो अब भी नजर आता है, लेकिन उस पर चलने का साहस हम नही बटोर पा रहे।

मै जानता हू छूछी भावुकता और छूछे आदर्शवाद का दोप तो मेरे नाम के साथ चस्पा हो चुका है। मैने अपना बचाव करने के लिए ये शब्द नही लिखे। मै जानता हू मुझे कहानी लिखना भी नही आता, लेकिन फिर भी मै लिखता रहता हू। मित्रो की सलाह मानकर मुझे अब लिखना बद कर देना चाहिए। फिर भी लिखता हू। मै यह भी जानता हू कि कला और गहराई इन दोनो शब्दो का मेरी कहानियो से कोई सबंध नही है, फिर भी मुझ से चुप नही रहा जाता। यदि यह अपराध है तो मैं इसे स्वीकार करता हू। मैंने कभी कोई दावा नही किया, अब भी नहीं करूगा, पर लिखता अतिम क्षण तक रहूगा।

समीक्षक और आलोचक पूर्ण स्वतत्र हैं इनका मूल्यांकन करने के लिए। मै बडी विनम्रता से कहूगा कि यह सब कुछ मैने अपनी स्थिति स्पष्ट करने की भावना से लिखा है, किसी के प्रति आक्रोश के कारण नहीं। जो मेरे बारे में लिखते है, चाहें कुछ भी लिखते हैं, वे मेरे मित्र ही है। अगर मित्र न होते तो डा जानसन की इस उक्ति 'यदि तुम किसी लेखक को मारना चाहते हो तो उसकी उपेक्षा करो।' (If you want to kill a writer, ignore him) पर अमल करते, मेरे मित्रो ने मेरी उपेक्षा नहीं की। इसीलिए नही कि कि वे मुझे प्यार करते है।

मुझे यह सब नहीं लिखना चाहिए था, पर लिख गया, इसके लिए क्षमा नही मागूगा।

शेष पाठक जाने।

—विष्णु प्रभाकर

कथा-क्रम

एक और कुंती

प्यारे दोस्त।

क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि यह पत्र लिखने का निर्णय करने में मुझे पूरा एक वर्ष लगा। और अनायास यह घटना न घटी होती तो शायद कभी न लिख पाती। मै नहीं जानती कि आपको क्या कहकर संबोधित करूं। आज निश्चय करके बेठी थी कि पत्र लिखकर उठूंगी। इसलिए सहसा जो सबोधन सूझा वही लिख रही हू। उसके पीछे जानबूझकर दिया हुआ कोई अर्थ नहीं है। चिट्ठी लिखने का एक और भी कारण हो सकता है। उसम मन उतर आता है। मै मन खोलना चाहती थी किसी के सामने।

आपको याद होगा कि लगभग दो वर्ष पहले आप इस निकेतन में आए थे। तब मैं नई-नई आई थी और नहीं जानती थी कि मैं जीती हूं या मर चुकी हू। जीना-मरना केवल सांस के आधार पर तो नहीं होता।

लेकिन मै इस मीमांसा में नही उलझना चाहती। आदमी गुत्थी सुलझाते-सुलझाते स्वयं उसमें उलझ जाता है। इसी उलझन से मुक्ति पाने के लिए तो मैंने साल-भर तक अपने से सघर्ष किया है। नर-नारी के सबंधों को लेकर मासिक 'प्रज्ञा' मे मैंने आपका लेख पढा था। उसके तुरंत बाद मैंने चाहा कि आपको पत्र लिखूं। वह लेख पढकर मे कैसी-कैसी न हो आई थी। उसी 'होने' के परिणामस्वरूप यह पत्र है। बहुत-से लोग आते है यहां। बहुत-सी बाते कहते हैं। विरह-मिलन के दृश्य भी बहुत देखे हैं मैंने। व्यापार भी होता है यहां। लेकिन आपके साथ ऐसी कोई बात नहीं हुई। फिर भी मुझे आपकी बराबर याद आती रही। क्यों? क्यों महसूस किया आपके साथ इतना अपनापन।

आपको बहुत अच्छी तरह याद होगा कि तब यद्यपि बादला से मुक्त धुला-धुला आकाश बाहर आने का आमंत्रण दे रहा था, लेकिन मै एक कोने में पांच बच्चो से घिरी हुई, एक जिंदा लाश की तरह पडी थी। मुझे दिखाकर सचालिका ने आपसे कुछ कहा था। सुन कम पाई थी, समझी बहुत कुछ थी। जिस समय आप मेरे पास से होकर चले गए और ठीक उस खिड़की के पीछे आकर खडे हो गए जहां मैं लेटी हुई थी, तब मुझे मालूम हुआ कि आप कौन है। मुझे देखकर आपके चेहर पर कोई भाव नही आया था या आपने आने नहीं दिया था, मैं नहीं जानती। लेकिन जब आप पीछे खडे थे तब मैंने आपकी काफी बाते सुनी थी। सचालिका ने आपसे कहा था, "देखिए

बहुत लोग आते हैं यहा और बहुत कुछ लिखते है यहा के बारे मे लेकिन मै आपसे प्रार्थना करती हू, इसलिए करती हू कि आप लेखक है और लेखक संवेदनशील होता है, आप इस नारी के बारे मे कुछ न लिखिए ''

आपने कहा था—यद्यपि उस कहने के बीच मे कई क्षण बीत गए थे और मै जानती हू, उन क्षणा मे आपके हृदय मे समुद्र-मथन हुआ था—आपने दीर्घ निःश्वास लेकर एक ही शब्द कहा था—'अच्छा'। लेकिन इस एक शब्द के पीछे कितनी वेदना कितनी अनुभूति और कितनी विवशता थी। आपके चेहरे पर व्यक्त वही त्रासद विवशता धीरे-धीरे मेरे समूचे शरीर में फैल गई थी। मै तडपकर उठ खड़ी हुई थी। मैंने खिडकी की सलाखो को पकडकर उस ओर झाका था। तब आप धीरे-धीरे संचालिका के साथ बाहर जा रहे थे। मै कई क्षणों तक ठंडी सलाखो पर जलते आसुओ से भरा अपना चेहरा टिकाए रही। द्वार के पास पहुंचकर आप मुडे। मुझे देखने के लिए नही बल्कि संचालिका को नमस्कार करने के लिए। लेकिन आपने मुझे न देखा हो, मैंने आपको देख लिया था और उसी क्षण मैं समझ गई थी कि आप भले ही मेरी कहानी को कागज पर न उतार सकें पर अपने अंतर में उसे निरंतर झेलते रहेंगे

संचालिका ने आपको मेरी कहानी बताई होगी। लेकिन क्या सचमुच बता सकी होगी? कोई नहीं शब्द दे सकता मेरी व्यथा-कथा को। मैं भी नहीं। सहते-सहते अनुभव करने की मेरी शक्ति समाप्त हो गई है। पर क्या आप विश्वास करेंगे कि आपका वह लेख पढकर मैं स्वयं पहली बार अपनी कहानी को समझ सकी। जानती हूं, आपने वह लेख मेरे लिए नहीं लिखा था। आपने मात्र अपनी सात समंदर पार के किसी देश की यात्रा के संस्मरण लिखे थे। सात समदर पार के बारे मे मैंने काफी कहानियां अपनी नानी से सुनी थीं—एक साहसी राजकुमार और एक सुंदर राजकुमारी की कहानियां। लेकिन आपने जो लेख लिखा था उसमें न राजकुमार की चर्चा थी, न राजकुमारी की। फिर भी उसमें अद्‌भुत साहस और अनोखे सौंदर्य की कथा गर्भित थी। नर-नारी के सबंधों की कथा. .

मेरी कहानी उन्ही संबधो की व्यथा-कथा है। मै एक तथाकथित सुसंस्कृत परिवार की बेटी और एक उतने ही सुसस्कृत तथा संपन्न घराने की बहू थी। स्वय सुदर मोहक और आकर्षक। उस दिन भी, बेशक वह ठंडा था, लेकिन एक अनोखा आकर्षण पाया होगा आपने मेरी उदास-उनीदी आखो में। इन्हीं आंखों के रहते तो मै बार-बार छली गई। जिस समय मैं उन्नीस वर्ष की थी उस समय कैसी लगती थी, इसकी कल्पना आप नहीं कर पाएगे। सौंदर्य को शब्दो में बांधना एक बात है, उसे सचमुच अनुभव करना दूसरी बात है। मै आकंठ ऐश्वर्य और विलास मे डूबी अपने पति के साथ उस अनूठे जीवन को भोग रही थी और समय एक सुनहरे सपने की तरह बीत रहा था।

उन्ही दिनो सहसा मेरे प्रांत के भाग्याकाश पर विपत्ति के बादल फट पडे। वे कैसे

दश का दुर्भाग्य बन गए, यह आपको बताने की आवश्यकता नही है। उस महानाश मे कौन कहा गया, किसके साथ क्या बीती, इतिहासकार इसको खतियाकर कभी नही देख पाएगे। देखना चाहिए भी नही। अपने कलक को अमर कर देना क्या अच्छी बात है? काल ने बडी नृशसता के साथ हमे इस बात का अहसास करा दिया कि उपयुक्त अवसर आने पर एक क्षण मे ही प्रभु की सर्वोत्तम कृति मानव, राक्षस में रूपातरित हो रहती है।

मै फिर उलझने लगी। अंदर जो घटाटोप है, लाख प्रयत्न करने पर भी वह निरतर विस्तृत होती दरारो मे से होकर चारो ओर बिखर जाता है। अचानक एक दिन भयकर आक्रमण हुआ हमारे घर पर! कैसे शब्द दू उस वीभत्स दृश्य को। घर के अधिकाश सदस्य शरणार्थी शिविर मे जा चुके थे। बस, मै और मेरे पति रह गए थे वहा, अत मे जाने के लिए। उन्होंने साहस के साथ मुकाबला किया पर . पर उन दरिंदों ने उन्हे मार डाला और और फिर उनकी लाश पर बलात्कार किया . मेरे साथ

एक सास मे पागल की तरह बोल जाता है आदमी, वैसे ही एक सास मे मै इसे लिख गई। दूसरा सास लेती तो लिख न पाती। जब होश आया तो मै एक छोटे से, कच्चे, गदे मकान मे लेटी हुई थी— नितात अकेली, असहाय, अपग। प्राणहीन हो गए थे मेरे सारे अग। मैं उन्हें हिला नही सकती थी। मैने सोचा, शायद मै मर गई हू और अपने पापो का दंड भोगने के लिए मुझे नरक मे ढकेल दिया गया है। कोई रात को स्वप्न में नदन कानन के सपने देखे और सवेरे अपने को नरक मे पाए, कैसा आघात लगेगा उसे! लेकिन वह नरक भी नही था क्योकि धीरे-धीरे प्रकाश मेरे चारो ओर फैलता जा रहा था, मेरी चेतना लौट रही थी। मै उठने का प्रयत्न करू कि तभी किवाड खोलकर एक व्यक्ति मेरे सामने आ खडा हुआ। कई क्षण मुझे देखता रहा अपलक। मै भी देख रही थी उसे और पलक झपक रही थी बार-बार। वह बोला, युगो बाद कही दूर से, "कैसी तबियत है?"

मै एकाएक चीख उठी, "मैं कहा हू? यह कौन-सी जगह है? तुम कौन हो?"

वह एक स्वस्थ व्यक्ति था। उसके चेहरे पर क्रूरता नही थी। वेदना के ऊपर आरोपित कठोरता थी। उसने धीरे-धीरे बताया, "मैं नही जानता तुम कौन हो, तुम्हारे घर वाले कहां है? गुंडे कुछ औरतो को भगाकर लिए जा रहे थे। लेकिन फौज ने उन्हे ढूढ लिया। उस मुठभेड में बहुत-सी लडकिया इधर-उधर भाग गई। जब सब लोग चले गए तो मैंने तुम्हें एक खेत में बेहोश पडे पाया। मै कौन हू, यह जानने की कोशिश मत करो। अभी इतना समझ लो, मेरा नाम नूर है। तुम बताओगी तो मैं तुम्हारे घर वालो को खोजने की कोशिश करूगा।"

न जाने कैसी संवेदना थी उसके इन सीधे-सच्चे शब्दों मे। मै रो पडी और सुबकियो के बीच उसे अपनी दास्तान सुनाने लगी। कई क्षण वह कुछ नही बोला, जैसे कुछ अकथनीय कहने के लिए साहस बटोर रहा हो। कई क्षण बाद धीरे-धीरे उसने

कहा, ''मैं जानता हू, उस शहर मे अब तुम्हारे घर-परिवार का कोई आदमी नही बचा है। जाति का भी नही। कुछ शरणार्थी शिविरों में चले गए हिंदुस्तान जाने के लिए, कुछ नफरत और हिंसा के सैलाब मे बह गए ।''

मैं तडप उठी। मैंने चीखकर कहा था, ''क्या मै नही जा सकती शिविर में? क्या आप मुझे यहा से निकल जाने में मदद नहीं कर सकते?. .क्या आप कृपा कर. ''

वह दीवार के सहारे खडा था। थोडा पास आया मेरे। बोला, पहले की तरह बहुत धीमे-धीमे, ''अभी कुछ नहीं हो सकता। चारो ओर दहकता हुआ लावा फैलता जा रहा है। किसी अंधेरी रात मे तुम्हे अपने घर ले जाऊगा। तुम्हारे लिए नए कपडे लाया हू और तुम अब आयशा हो।''

''क्या?''

''हा, अब तुम आयशा हो, समझती हो?''

प्यारे दोस्त! वे कपडे पहनते न पहनते मै कितना रोई थी। फिर भी हुआ वही जो नूर ने चाहा था। आने वाली पहली अमावस की रात में मै माना हमेशा के लिए नकाब पहनकर उसके घर चली गई ..मर न सकी। मर जाना चाहिए था न, पर अपने से अजनबी होकर रहना मरने से कहीं त्रासद होता है। मै जानती थी कि नूर ने मुझे इसीलिए बचाना चाहा था कि मै नारी थी और सुदर भी, नर-नारी का यही सबध शाश्वत है न.

और एक बात बताऊ, नूर अविवाहित और हिंदू था। कई दिन बाद पता लगा था मुझे। वह अपनी जमीन-जायदाद बचाने के लिए मुसलमान बना था।

बहुत लंबी कहानी है मेरी। टुकडो-टुकडों में कह पाऊगी। आप चाहे तो उपन्यास लिख सकते हैं। पर मेरा अनुरोध है, न लिखिए। कोई कैसे शब्द दे सकता है उस भावना को जो मेरे मन मे तब उठी थी जब मैंने अनुभव किया कि मै मां बनने वाली हू। दर्द और नफरत का सैलाब मेरे अस्तित्व को लील गया था तब। मैंने पेट पर मुक्के मार-मारकर गर्भ गिराने की नाकाम कोशिश की थी पर नूर सजग था। मै अपने मसूबे मे कामयाब नहीं हो सकी। सच तो यह है कि मेरे अपने अंदर कोई था जो मेरे मसूबो को नाकाम बनाने पर तुला हुआ था। अपने ही 'मै' के दोहरेपन को हम कब समझ पाते हैं

मेरा एक और बेटा था जिसे मै पीछे छोड गई थी। उसकी याद करके अकसर मै रोती थी। पति तो अब आने वाले नही थे पर क्या मै अपने बेटे को भी नही देख पाऊगी. लेकिन मै तो नए बच्चे की बात बता रही थी। कहां से आया यह, कैसे आया? नूर तो उस सारे समय मेरे पास तक नही आया है प्रभु! तुम हो क्या? सचमुच हो

कितना पुकारा था मैंने उस निर्मम को पर वह नहीं पसीजा और समय धीरे-धीरे फिसलता रहा, और मुझे लगता रहा, जैसे वह ठहर गया है। मेरे चारों ओर एक सुलगता अग्निकाड है जिसमे से उठती आदमी के रक्तमांस की चिडायध मेरे नासा-रध्रो मे

घुमती जा रही है। मे सोते-सोते चीख उठती। मै बाहर भागने का पागल हो उठती

लेकिन इस विभीषिका के बीच मे नूर था कि अविग चट्टान की तरह खडा रहा। वह मेरे पास नही आता था, पर दूर भी नहीं जाता था। उसने मेरे आसू पोछने की भरसक कोशिश की। मेरे परिवार का पता लगाने का प्रयत्न किया लेकिन सफल नही हो सका। तब एक दिन वह मेरे पास आकर बैठ गया। बोला, ''धीरे-धीरे आग बुझ रही है। तुम लोगो को निकालने के लिए सेना आती रहती है। चाहो तो तुम भाग जा सकती हो।''

आश्चर्य। मैं तब पुरइन के पत्ते की तरह काप उठी थी। और मैंने चीखकर कहा था ''नही-नहीं, मै नही जा सकती। मैं नहीं जाऊगी।''

तब पहली बार उसने मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर थपथपाया। उस स्पर्श के साथ न जाने कैसे भीगी-भीगी सवेदना मेरी रग-रग मे प्रवाहित होने लगी। मुझे अच्छा लगने लगा। उस दिन वह चुपचाप चला गया। लेकिन तीसरे दिन, पाचवे दिन, सातवे दिन उसने फिर वही कहा। मै निरंतर लडती रही अपने-आपसे। पद्रहवे दिन आकर वह बडे प्यार से बोला, ''चलो, वे लोग बहुत पास हे। मैं तुम्हे छोड आता हू। तुम न जाना चाहो तो मै उन्हे यही बुला लाऊगा।''

मै अब पूरी तरह शांत थी। पूरी दृढता से मैंने जवाब दिया, ''मै नही जाऊगी। तुम सब कुछ जानते हो। फिर भी मुझे जाने को कहते हो .क्यों ?''

तब तक वह मुझे अपनी कहानी सुना चुका था।

कई क्षण मेरी ओर देखता रहा। उसके बाद उसने कभी मुझसे जाने के लिए नही कहा। अब मुझे जीवन-भर यही रहना था।

मेरे दोस्त! घोर अवसाद मे डूबे रहने के बावजूद उस दिन मेरे उदास चेहरे पर पहली बार मुसकराहट उभरी थी। इसी के साथ शुरू हुआ, मेरी कहानी का दूसरा अध्याय। एक दिन मैं मां बनी। अत्याचार की राह आए उस नए शिशु को देखती तो मेरी सुबकियां फूट पड़ती। लेकिन उस मासूम की दृष्टि मे न जाने क्या था कि एक निराली पीर कसक उठती मेरे अंतर मे और मुझे उन्माद से भर देती। नारी के कारावास की कहानी यही से आरभ होती है।

मेरे दोस्त! क्या आप विश्वास करेंगे कि छह माह बीतते न बीतते मै फिर मा बनने को हुई। मै अब नूर की पत्नी थी। उसने मेरे बच्चे को अपना लिया था और मैंने अपने अतर से पिछले जीवन को धो-पोछ डाला था। धो-पोछ डालने की यह प्रक्रिया कितनी मर्मातक थी। उसकी अब क्या चर्चा करू। पति चले गए थे। उनका परिवार मुझे स्वीकार नही कर सकता था। बस, बेटे की याद आती थी। कैसी विडंबना है जो प्यार की राह आया वह दूर हो गया और जो. .

अब वह कहानी नही। लेकिन मेरे कहने मात्र से तो कहानी खत्म नही हो सकती। यहा के लोग जानते थे कि नूर जमीन-जायदाद को बचाने के लिए मुसलमान

बना है। धीरे धीरे वे उस पर दबाव डालने लगे। और जैसे ही उसने प्रतिरोध करने की कोशिश की, उन्होंने उसे मार डाला। क्षत-विक्षत तन-मन लिए मैं फिर दोराहे पर खड़ी थी— पाषाणवत्। नारी भी तो जमीन ही होती है न और जमीन के पास उसकी अपनी कोई आवाज नहीं होती। अन्नपूर्णा होकर भी वह संपत्ति होती है किसी नर की

सातवें दिन एक और नर की पदचाप बिलकुल मेरे पास आकर रुकी। मैंने आखें खोल दीं। वह मेरे पास बैठ गया। बोला, ''फारुखी हूं। यहां कालेज में पढ़ाता हूं। मुझे बहुत दु:ख है कि नूर बेगुनाह मारा गया। वह मेरा दोस्त था। उसने मुझे यह मकान देने का वायदा किया था। नहीं. .डरो नहीं, मैं तुम्हें जाने के लिए नहीं कहूंगा। तुम यहीं रह सकती हो।''

मैं पूरी तरह मोहताज बनी आखें फाड़े-फाड़े छत की ओर देखती रही। मैं जानती थी, मैं खूबसूरत हूं और जवान हूं। इन दो-ढाई वर्षों में मैंने क्या कुछ नहीं भुगता। लेकिन यौवन का ज्वार तो जैसे मेरे शरीर में अड़ी मारकर बैठ गया था। मौत बार-बार पास आकर लौट जाती थी। इस बार भी लौट गई। मैं एक जिंदा लाश की तरह जीती रही।

मेरे दोस्त! आपने नर-नारी की समानता के लिए एक-दूसरे के आकर्षण से मुक्ति की बात कही है, पर क्या आप विश्वास करेंगे कि प्रोफेसर फारुखी के इसी आकर्षण ने मुझे एक बार फिर जीवनदान दिया। एक बार फिर मेरे अंगों में वसंत की बयार बहने लगी। हर औरत के अंतर में बराबर एक मर्द रहता है। फारुखी सचमुच मर्द था। और शायर भी। उसके अनेक अशआर आज भी मेरे अंतर को आलोकित करते रहते हैं। उसने मेरे साथ निहायत शरीफाना बरताव किया। उसने मेरे दोनों बच्चों को किसी तरह का अभाव नहीं खटकने दिया। मोहब्बत और इनसानियत की हवा पाकर वे जैसे पनप उठे। और पनप उठा मेरा अंतर्मन। दिलों का रिश्ता शरीर के रिश्ते से जुड़ गया। उसने मुझसे बकायदा निकाह किया। मेरा नाम सुरैया रखा। चौथा पुरुष था वह मेरे जीवन में। आपने लिखा है, पश्चिम की नारी सहज भाव से कह सकती है, 'मेरा चौथा पति।' प्राचीन भारत में भी शायद कुंती ने कहा था, 'इन्द्र चौथा पुरुष है।' और द्रौपदी तो एक समय पर पांच पतियों की प्राणवल्लभा थी। वे सब हमारी प्रात:स्मरणीय पूज्य हैं। लेकिन क्या मैं कभी यह कह सकूंगी, 'फारुखी मेरा चौथा पुरुष था?' मैं चौथी बार मां बनने जा रही हूं।

समय के प्रवाह में नर-नारी के संबंध कहां से कहां बह गए!

मैं फिर उलझने लगी तर्कजाल में लेकिन एक बात मैं पूरे विश्वास के साथ कह सकती हूं, यदि मैं अपने पहले पुरुष के साथ रहती होती तो मेरे चौथी बार मां बनने पर आनंद और उल्लास से वातावरण महक उठता। अजस्र आशीर्वादों की वर्षा होती मुझ पर। मातृत्व के गौरव से मेरा भाल चमक उठता। मां मैं अब भी बनती थी, पर गौरव करने लायक कहीं कुछ नहीं होता था। होती थी एक विवशताजन्य उदासीनता।

लेकिन मुझे यह स्वीकार करने मे आज तनिक भी लज्जा नही है कि उस पठान को छोड़कर जिसका मै नाम नही जानती, नूर और फारुखी, दोनो ने मुझको प्यार दिया। जब-तब छा जाने वाले गहरे अवसाद के बावजूद मैने उस प्यार को जिया। मन की उन बातों को छिपाने का आज कोई कारण नहीं है। किसके लिए छिपाऊंगी इस दुचित्तेपन को? मनुष्य केवल आतरिक शक्ति के सहारे नही जीता, बल्कि उसे उस शक्ति की भी आवश्यकता होती है जो उसे दूसरों की हमदर्दी म से मिलती है।

लेकिन यह आनंद भी स्थायी नहीं हो सका। अचानक एक दिन फारुखी घबराया हुआ आया। बोला, ''सुरैया। दुश्मन कामयाब हो गए। मुझे यहा से दूर एक कालेज मे बदल दिया गया है। मुझे आज ही जाना होगा।''

हठात् जैसे मै खौलते कढाह मे गिर पडी हू। चीख उठी, ''नही, मै अकेली नही रह सकती। मैं तुम्हारे साथ चलूगी।''

पर मैं कैसे जा सकती थी? मै अभी-अभी चौथी बार प्रोफेसर फारुखी के बेटे की मा बनी थी। उस रात हम सो नही सके। तमाम समय उसे बीतते देखते रहे और वह सात्वना देता रहा। सवेरा होते न होते वह चला गया। जाते समय उसने सच बात बताई, ''मै आऊगा। मै जानता हूं, यह सब जालसाजी है। मुझसे यह मकान छीन लिया गया है। मुझ पर इलजाम लगाया गया है कि मैंने नूर को मारकर उसकी बीवी को नाजायज तौर पर रखा हुआ है। और कि तुम हिंदुस्तान मे भगाई एक एक हिंदू औरत हो। मैं परदेशी हू। सब हाकिम उनकी तरफ हैं। लेकिन मै आऊगा। मैने तुम्हारे लिए सब इतजाम कर दिए है। आया आती रहेगी तब तक।''

उसने अतिम बार मेरा चुबन लिया और देर तक उंगलियों को पकडे मेरी आखो मे झाकता रहा। उस दृष्टि से बहते प्यार, दर्द और क्षमा की एक गुनगुनी धारा ने मेरे बाध को तोड दिया। उसके जाते ही मै सिसकने लगी

तीसरे दिन जब मैं अपेक्षाकृत शांत थी, मैंने मुजफ्फर को अपने सामने पाया। उसकी आखों में शरारत थी और होंठों पर भी मंद-मंद मुसकान। वह मुझसे इजाजत लेकर अदर आया। उसने धीरे-धीरे कहा, ''मुझे बहुत अफसोस है, प्रोफेसर साहब तुम्हे छोडकर चले गए। उम्मीद नहीं कि वह अब लौटेंगे। क्या तुम हिंदुस्तान जाना चाहोगी?''

मै एक बार फिर जिंदा लाश में बदल चुकी थी। फिर भी मैं झूठ नहीं बोल सकी। कई क्षण देखती रही उस पुष्ट कधो वाले पंजाबी युवक को। फिर बोली ''मै कही नही जाना चाहती। बस, मरना चाहती हूं।''

वह मुसकराया, ''ठीक है, मैं दो दिन बाद तुम्हे अपने गांव ले जाऊगा। वहा तुम्हे यह जाहिर करना होगा कि तुम हिंदुस्तान के लोगों की सताई हुई एक मुस्लिम खातून हो।''

मुझे ऐसा लग रहा था जैसे कही बहुत दूर से आकर ये शब्द मेरे मस्तिष्क मे

केंचुओं की तरह रेंग रहे हो। सुनता हूं, केंचुए बहुत बढिया किस्म की खाद बनाते हैं। मैं तो . नहीं शायद मैं भूली, मैं शायद तब खाद बनकर ही रह गई थी— बढिया किस्म का खाद, जिसमें बदबू नहीं उठती। काश, मुझमें से बदबू उठ सकती।

प्यारे दोस्त! एक दिन सचमुच मैंने अपने-आपको एक छोटे-से खुशहाल देहात में पाया। वहां स्त्री-पुरुष सब मिलकर खेती करते थे और फिर हीर-रांझा के गीत गाते थे। कितनी मस्ती थी उस आलम में! वहां की सुहानी धूप तक हमसे लिपट-लिपट जाती थी। बचपन में मां-बाप के साथ ऐसे ही देहातों में रहते हुए मैंने न जाने कितने सतरंगे सपने देखे थे, इसलिए बहुत देर तक मैं उस वातावरण से अछूती न रह सकी। बयार की मादकता ने मेरे उभारों को फिर से आकर्षक बना दिया। मैंने निश्चय किया था कि अब मैं किसी को अपने पास नहीं आने दूंगी। लेकिन पास आने या न आने देने वाला कोई 'मैं' थोड़े ही होता है। वह तो एक गंध होती है। नर-नारी के संबंधों की गंध जो किसी एक के अंगों से फूटती है और किसी दूसरे के अंगों को खींच लेती है।

फारुखी इस स्वाभाविक आकर्षण को न जाने क्या-क्या नाम दिया करता था, पर मुजफ्फर था कि भाषा से नितांत अपरिचित था। उसकी आंखों की शरारत, उसके होंठों की मुसकान और बाहों की जकड़न इतनी मांसल थी कि लोथ में भी चाह पैदा कर देती थी।

इसका जो परिणाम हो सकता था वही हुआ—नारी फिर मां बनी। इस बार दो जुड़वा बच्चों की मां। नियति का व्यंग्य कितना क्रूर होता है। और मेरे पांच बेटे थे अब। कुंती के भी पांच बेटे माने गए हैं। छठे को, जो उसका पहला था, उसने स्वयं त्याग दिया था। मेरा भी छठा बेटा है, मेरे प्रेम का प्रतीक पर वही मुझसे छीन लिया गया।

आपको नाम तो बताए नहीं उनके। आवश्यक नहीं है पर बिना नाम यहां कुछ नहीं चलता तो, मान लीजिए, तब उनके नाम थे—अनवर, अशरफ, असगर, अहमद और अली।

आप पूछेंगे, 'छठे बेटे का नाम क्यों नहीं बताया।' जब वह मेरा रहा ही नहीं तब नाम लेकर क्या करूंगी? फिर भी उसका नाम है—आशिम।

तो मेरे दोस्त! मेरी जिंदगी का चक्र इस तरह तेजी से घूम रहा था। उन गांव वालों की दृष्टि में मैं पांच बेटों की मां थी, बेहद खुशकिस्मत और सुखी भी। मुजफ्फर को मेरे निगोड़े रूप का जादू पागल बनाए हुए था। लेकिन यह कोई नहीं जानता था कि इस सुख और सौंदर्य को भोगने वाली मात्र एक जीवित लाश, संस्कार और सभ्यता के आवरण से मुक्त एक कठपुतली है, जो न जाने कौन-सी नियति के इशारे पर यह सब कुछ करने को विवश थी।

इसके पीछे नर-नारी के शाश्वत संबंध थे या वे खतरनाक परिस्थितियां थीं जिनमें मैं अपने बावजूद उलझती जा रही थी। और स्वामित्व जताने वाले हर पुरुष को मैं प्यार करने का नाटक करती थी। लेकिन नाटक करने की भी एक सीमा होती है। मैं जैसे

टूट गई और मैंने तय कर लिया कि इस उर्वर भूमि पर अपना जीवन गुजार दूगी। मै मुजफ्फर की बीवी हू, उसी की रहूंगी। पांडु की तरह वह मेरे पांच बच्चो का बाप कहलाएगा। और फिर मै एक दिन बूढी होकर अपने किसान बेटो के हाथों यहां की जमीन में दफना दी जाऊगी। न सही मत्र-पाठ, कुरान शरीफ की आयते मेरी मिट्टी को मिट्टी के सुपुर्द कर देगी।

लेकिन कुरुक्षेत्र का युद्ध अभी पूरा नहीं हुआ था। उस दिन मुजफ्फर घर लौटा तो बेहद परेशान था। उसने कहा, "तुम यहां नहीं ठहर सकोगी। तुम्हे और दूर पहाडो के उस पार जाना होगा। तुम्हारे देश वाले तुम जैसी औरतो को ढूंढते फिर रहे है और उन्हे शक है कि एक औरत इस गांव में भी है।"

कितनी बार हुआ था यह। मैं स्तब्ध तो न हो सकी, पथराई आखों से देखती रह गई उसे, बस। उसने मुझे बांहो मे समेट लिया। बोला, "तुम परेशान मत होओ। सब इतजाम कर दिया है मैने। मेरा दोस्त है वहां।"

"तुम नही चलोगे?"

"अभी तो नहीं..पर आऊंगा, जल्दी ही आऊंगा।"

हर बार नियति ने मुझसे छल किया। हर बार मुझे लगा कि मैंने स्वय ही स्वय की हत्या की है। हर बार मै अपने से पूछती, 'यह तू ही है क्या ?'

उस रात चुपचाप, घुप्प अंधेरे मे, बिना किसी-से मिले और पांच बच्चों के साथ मै एक अनजान प्रदेश की ओर रवाना हुई। अहमद और अली तब एक-एक वर्ष के थे, असगर, अशरफ और अनवर क्रमशः दो तीन और चार वर्ष के हो रहे थे। कई दिन की यात्रा के बाद हम एक छोटे-से पहाडी गाव में पहुंचे। और आप विश्वास नहीं करेंगे, पूरे तीन साल तक यहा से वहां, वहां से कहां-कहा मैं भटकती रही। तीन-चार महीने से अधिक कभी एक जगह न रह सकी। साल-भर मुजफ्फर से संबध बना रहा। उसके बाद वह भी नहीं आया। यह सब यो-ही हुआ या जानबूझकर पैदा किए किसी भ्रम के कारण। मै बेसहारा, बेपनाह, भीख मागने को विवश हो गई। आप पूछेंगे कि क्या मेरे रूप ने अब और किसी को आकर्षित नहीं किया? किया, लेकिन अब मुझमे न जाने कैसी अंध-चेतना जाग उठी थी। न समझ में आने वाला एक विद्रोह अवसर आने से पूर्व ही मुझे वहा से निकल भागने को विवश कर देता। अपने को बचाने के लिए मैने अपने-आपको और अपने बच्चों को बार-बार खतरे मे डाला..

क्या करेगे आप उस लंबी यातना की दास्तान सुनकर, इतना ही जान लीजिए कि मुजफ्फर का घर छोडने के तीन वर्ष बाद मैंने अपने को पेशावर में पाया। तब न मेरे पास रह गया था रूप, न यौवन, लेकिन चलते रहने की एक अदम्य लालसा अभी शेष थी। जीने की लालसा जो हर खतरे को मोहक बना देती है या कहूं कि हमेशा खतरनाक परिस्थितियो मे जूझते-जूझते मेरी ताकत निरतर बढती जा रही थी। जीवित रहना भी कितना विलक्षण है!

मेरे दोस्त!

यहीं वह अघटित घट गया जिसको न घटने देने के लिए मैं अब तक भागती रही थी। अनवर अब सात वर्ष का हो रहा था। दुख और कष्टों के इस पारावार ने उसमें अद्‌भुत संवेदना पैदा कर दी थी। वह अनचाहे, जालिम बाप का बेटा था, लेकिन वही मेरे पावों के कांटे निकालता था। भीख मांग लाता, मौका पड़ने पर छोटे-मोटे काम भी कर लेता। कहां से आई उसमें यह चेतना? कैसा है यह प्यार और नफरत का आल-जाल— अनबूझ-अनचाहा लेकिन कुछ भी हो, वह मेरा हमसफर बन गया। एक ऐसे सफर का साथी जिसके अगले पड़ाव का हमें कुछ पता नहीं होता था।

मेरे दोस्त, जिस डर से मुजफ्फर ने मुझे पहाड़ों में छिपाया था, पीछा करते-करते वही डर यहां आ पहुंचा। हिंदुस्तान के लोग इस इलाके में विशेष रूप से सक्रिय थे। नियति भी कैसे-कैसे खेल-खेलती है। उसने एक दिन अनवर को उन्हीं के पास भेज दिया। वह जानता था कि मैं कभी हिंदू थी। लेकिन उससे बातें करते-करते उन्हें जब पता चला कि हम कई वर्ष से भागते फिर रहे हैं तो उन्हें शक हो गया। वही शक उन्हें मेरे पास खींच लाया। आश्चर्य! उनके पास मेरा चित्र था और पूरा परिचय भी। मेरी आंखों ने मुझे यहां भी धोखा दिया। उन्होंने 'सुरैया' के वेश में 'प्रतिमा' को पहचान लिया। मेरे हाथों से एक और जिंदगी रेत की तरह फिसल गई। एक बार मैंने फिर मरना चाहा। चाहा कि सब बच्चों को लेकर नदी में कूद जाऊं पर हुआ यह कि मैं क्रोध से भभक उठी और मैंने अनवर को बुरी तरह पीट दिया। वह बिलबिलाता रहा और सुबकियों के बीच कहता रहा, "अम्मी! मैंने उन्हें कुछ नहीं बताया था। कुछ भी नहीं. सच अम्मी!"

उस रात उस मासूम बच्चे को छाती में समेटकर मैं कितना रोई, कोई ले सकेगा थाह मेरे उन जलते आंसुओं की

प्यारे दोस्त! प्रतिमा से सुरैया तक की यह यात्रा नारी होने की त्रासदी की यात्रा है। नर-नारी के संबधों में नारी के हिस्से में त्रासदी ही तो आती है, जो बार-बार उसे उसकी अपनी धुरी से उखाड़ फेंकती है।

कहानी का अंतिम पर्व आ पहुंचा है। एक दिन पाया कि मैं इस नारी-निकेतन में हूं— अधमृत, अधेड़, चिथड़ों में लिपटी एक लाश। कितने जीवन जी चुकी थी मैं! शायद अब यह अंत था, ऐसा अंत जो 'अनंत' है। मैं फिर प्रतिमा बन गई थी। पत्थर की प्रतिमा, जिसका एक-एक अंग तोड़ दिया गया है। जिसकी आत्मा में हजार छेद हैं, जो इस देश की भाषा में पापिष्ठा, दुराचारिणी और कलंकिनी है। और उसका सबूत हैं ये मासूम बच्चे जिनको मैंने अपने शरीर के टुकड़ों में बांट-बांटकर जन्मा है। और जिन्हें आश्रम में फिर नए नाम दिए गए हैं। वे अब अनवर, अशरफ, असगर, अहमद और अली नहीं है, अनिल, अशोक, असित, अमित, और अजित हैं। शायद इसीलिए अब और अधिक तिरस्कृत, अपमानित, लांछित तथा घृणा के पात्र बन गए है।

सचालिका ने एक दिन मुझसे कहा, "तुम्हारे ससुराल वालो को सूचना दे दी गई है, लेकिन कोई आएगा, इसकी संभावना दिखाई नहीं देती। तुम्हारी खोज उनके कहने पर नहीं, बल्कि तुम्हारे पिता के कहने पर की है हमने।"

मैंने तडपकर जवाब दिया, "कौन आता है, कौन नही, इसकी मुझे चिता नही हे, लेकिन यह जानने का अधिकार मुझे है कि आखिर हमे इधर क्यों लाया गया? क्या आवश्यकता थी हमें अपमानित करने की?"

सचालिका मुसकराई, बोली, "देश की प्रतिष्ठा का प्रश्न था यह।"

आप सर्जक है। क्या मैं आपसे पूछ सकती हूं कि मनुष्य का अपमान करके कोई अपनी प्रतिष्ठा कैसे रख सकता है? उधर मै जैसी भी थी, घृणा की पात्र नहीं थी। मा को भगवान के समकक्ष मानने वालो के देश में नारी का अपमान क्या प्रमाणित करता है, क्या यह भी बताना होगा आपको?

संचालिका ने ठीक कहा था, कोई नहीं आया मेरी ससुराल से। आए बस मेरे पिता, लेकिन मिलने का साहस वे भी नहीं बटोर सके। मेरी कहानी सुन चुके थे। अपनी पापिष्ठा बेटी से आखें कैसे मिलाते! सचालिका ने बताया कि वे दूर से ही देखते रहे, रोते रहे, फिर वहीं से लौट गए। बाद मे उन्होने एक हजार रुपया मेरे लिए भेजा था कि मै किसी गाव मे जाकर रह सकूं और अपने पैरो पर खडी हो सकू। आवश्यकता पडने पर और भी भेजते रहने का आश्वासन दिया था। लेकिन वह नही चाहते थे कि मेरी मा मेरे बारे में कुछ जाने।

सुनकर मैं हॅस पडी, अब मुझे रोना नहीं आता था। पंडित लोग इसे योग की स्थिति बताते है। सिद्धावस्था यही नहीं है क्या शास्त्र तो, मैने सुना था, यह भी कहते है कि आदमी कुछ नहीं करता। प्रकृति उसे अपने काम में जोत देती है। यानी हम यन्त्र है किसी निश्चय करने वाली शक्ति के। तब वे लोग मुझसे नफरत क्यों करते हैं? क्यों मेरे प्यारे दोस्त.. ?

लेकिन अभी रहने दीजिए इस प्रश्नाकुलता को, अभी तो कहानी का चरम उत्कर्ष आना शेष है। और शेष है मुझे अभी और कटुता का विष पीना। हर दूसरे-तीसरे दिन मै अनुभव करती थी कि कोई चुपचाप मुझे और मेरे बच्चों को देख रहा है। चुपचाप संचालिका से बाते कर रहा है। एक दिन संचालिका ने मुझसे पूछा, "तुम यहा मे कहीं जाना चाहती हो?"

मैने एक क्षण उनकी ओर देखा, फिर यन्त्रवत् बोली, "हा।"

उन्होंने कहा, "मैंने तुम्हारे लिए दूर एक पहाडी गाव मे रहने का प्रबध किया है। वहां के स्कूल मे तुम पढा सकोगी। गृहशिल्प में तुम निपुण हो। गांव की महिलाओ को प्रशिक्षित कर सकती हो। लेकिन तुम अपने इन बच्चों को कैसे पालोगी? क्या यह अच्छा नहीं होगा कि इनमें से कुछ को भले घरो मे गोद दे दिया जाए.. ?

उस दिन पहली बार मेरे भीतर सोई नागिन जाग उठी। आवेग इतना प्रबल था

कि शब्द मुंह से नही निकल रहे थे। चाहा कि धक्का देकर उन्हें दीवार मे दे मारू

सचालिका, जो सचमुच मेरे प्रति अतिरिक्त सदय हो उठी थी, मेरा यह रूप देखकर घबरा गई, तुरत बोली, ''नहीं नही, यह जरूरी नहीं है। जल्दी भी नहीं है। मेरे मन मे एक विचार उठा था, कह दिया। सोच, देखना तुम।''

और वे तुरंत मेरे सामने से हट गई। दो क्षण बाद आवेग कुछ शांत हुआ तो मै स्वयं अपने पर चकित थी और किंचित लज्जित भी। मै जानती थी, मै जीवन-भर किसी पर आश्रित नहीं रह सकती। कुछ न कुछ प्रबंध मुझे करना ही होगा। गांव जाने के लिए इसलिए तैयार थी कि मैं अपने तथाकथित परिजनों से अब और अपमानित नहीं होना चाहती थी। पिताजी का दान लेना स्वय अपना अपमान करना था। दुर्बलता के किन्ही क्षणों में चाहा था कि उन्हें पत्र लिखू। याद करू लाड़-प्यार के उन दुर्लभ क्षणों की। फिर सोचा कि जो संस्कारो की जडता को तोडकर मेरी वेदना में सहभागी नही हो सकता, उसको पीड़ा पहुंचाना आत्मपीडन ही नहीं होगा क्या? . गांव चली जाऊगी और अपनी संतान को पालूंगी मैं स्वय।

प्यारे दोस्त। मैंने आपको बताया न, जो पाप और पीड़ा की राह आया और जिसकी हत्या करनी चाही मैंने, वही अनवर यानी अनिल मुझे सबसे अधिक प्यार करता है। मेरी सारी घृणा पी गया है वह नीलकठ महादेव की तरह। ऐसे बर्ताव करता है जैसे वही मेरा गार्जियन है। पूछता है कभी-कभी, ''अम्मी। मैं अब अनिल कैसे हो गया? अनवर और अनिल मे क्या फर्क है? अम्मी। ये सब हमें ऐसे क्यों देखते हैं?''

आयु के आठवें वर्ष मे ही विधाता ने कितना बोझ रख दिया इसके कंधो पर। इसके विपरीत, नूर का बेटा अशरफ जो अब अशोक है, बेहद उद्दंड है। हर समय हर किसी से फौजदारी करने पर तुला रहता है। लेकिन पढने में होशियार है। असगर उर्फ असित सचमुच शायर का बेटा है। छह वर्ष का हुआ नहीं अभी, पर न जाने कहा खोया रहता है। कभी-कभी उनींदी आंखों से मुझे देखता है कि मेरे दिल में फारुखी की याद कसक उठती है!

कितनी यादें, कितने मंजर, किसको भूलूं, किसको याद करूं। मुजफ्फर शायद मुझे अब भी ढूंढ़ता फिरता होगा। कहीं अपने बच्चो का दावा करने न आ पहुचे वह। उसके दोनों बच्चे अहमद और अली जो अब अमित और अजित के नाम से पुकारे जाते है, अपने पिता के बारे में कुछ नहीं जानते। कभी-कभी पूछते हैं, सभी पूछते रहे है और मैं झूठ बोलती रही हूं। किसी को कभी सच नहीं बताया। सच कुछ होता है क्या? किसी के सच को नापने का यंत्र अभी कोई वैज्ञानिक नहीं बना पाया है।

स्कूल के रजिस्टर मे मा का नाम कभी नही लिखा जा सकता। बाप अनिल, अशोक, असित, अमित और अजित का कोई है नहीं। हैं तो अशरफ, असगर, अहमद और अली के हैं। अनवर के बाप को तो कोई जान ही नहीं सकेगा। कैसा अच्छा था उपनिषद् काल का भारत। उस काल के परमतत्त्ववेत्ता सत्यकाम की दासी मां जाबाला

मे यह कहने का साहस था, ''मै नही जानती तुम्हारे पिता कौन थे। तुम मेरे बेटे हो। मेरा ही नाम लिखा दो गुरु के रजिस्टर मे।

और तब सत्यकाम का नाम हुआ–सत्यकाम जाबाल। क्या आज मेरे बेटो को यह अधिकार मिल सकता हे? क्या वे गर्व से सिर उठाकर कह सकेंगे कभी, 'हमें पता नही पता, हमारा पिता कौन था। हम मां को जानते हैं और उनका नाम है प्रतिमा। वही लिख लीजिए रजिस्टर मे।'

मातृत्व को नारी का चरम सौंदर्य माना है। वह मुझे मुक्तकंठ से मिला है। किस ओर से मिला, यह प्रश्न गौण है इसे एक और दृष्टि से भी देखिए, आर्य परंपरा मे मा का पद सर्वोच्च है इसीलिए तो जहर भी सबसे अधिक पीना पड़ता है, नारी होने के अपमान का जहर.. मुझे कहने दो, मेरे दोस्त! जिसे सबसे अधिक अपमानित करना होता है उसे ही सबसे सुदर विशेषण दिए जाते हैं। बलि के बकरे को हृष्ट-पुष्ट न करेगे तो कौन खरीदेगा उसे? आपने नर-नारी के सबधो के सौंदर्य मे इस तथ्य की चर्चा नही की है। पुरुष है न अंतत· .

आप सोचेंगे, मैं इतनी क्रूर क्यो हो उठी हूं!

उस दिन तभी वर्षा होकर चुकी थी। वातावरण एक सोंधी-सोधी गंध से महक रहा था। मै अपने कमरे की खिडकी का लोभ संवरण न कर सकी। यह वही खिडकी है जिसकी सलाखो पर अपना भीगा चेहरा टिकाकर मैंने आपको देखा था।

उस दिन देखा एक किशोर होते बालक को—स्वस्थ, सुंदर, स्कूल की शुभ्र-श्वेत पोशाक, पीठ पर बस्ता, धीरे-धीरे चौकन्ना-सा वह आश्रम के मुख्य द्वार तक आया और वहीं से उचक-उचककर मेरी खिडकी की ओर देखने लगा। मै चौकी, मेरा कौतूहल जाग आया। मैंने सलाखों पर चेहरा टिकाकर उसे गौर से देखा। वह भी तब टकटकी बांधे इधर ही देख रहा था। हमारी दृष्टि मिली, उसने जैसे प्रेत देखा हो, तेजी से मुडा और ताबडतोड़ भागने लगा। एक बार भी मुडकर नही देखा उसने।

हतप्रभ-स्तब्ध एक क्षण तो समझ न पाई, फिर तो एक ठंडी सिहरन मेरे रेशे-रेशे मे उतरती चली गई—कहीं .कहीं.. !

''नहीं . नहीं .'' मैं तेजी मुडी। अनिल सामने आ गया। मेरी ओर देखा उसने, चेहरे पर प्रश्न उभरा, ''क्या है अम्मी?''

''कुछ नहीं! कुछ नहीं, बेटे।'' मैंने अपने को सहेज लिया, पर भीतर ..

''एक बात बताऊ, अम्मी?''

''क्या बात है?'' में फिर सिहरी।

''मैं बताना भूल गया था,'' अपराधी की तरह उसने कहा, ''कई दिन से एक लडका यहां आता है।''

यहां तो बहुत से लोग आते हैं लडके भी होते हैं उनमें तुम किस लडके की बात कर रहे हो?

अनिल कहता रहा, "वह बहुत अच्छा है। उसने मुझे चाकलेट दी थी। उसने पूछा था, 'वहा कोई प्रतिमा है?'

"मैंने एकदम कहा, 'हा, अब मेरी मम्मी का यही नाम है।'

"उसने पूछा, 'अब यही नाम है। पहले नहीं था?'

"मैने कहा, 'पहले तो उनका नाम सुरैया बेगम था। जैसे मेरा नाम अनवर था। अब मे अनिल हूं।'

"वह बोला, 'तब वह कोई और है, लेकिन क्या तुम मुझे उन्हे दिखा सकते हो?'

"मैंने कहा, 'हा-हां, उस खिड़की वाले कमरे में रहते है हम। आओ मेरे साथ।'

" 'नहीं-नही, फिर आऊंगा।' कहता हुआ वह भाग गया था। वही आज फिर आया "

न जाने वह कोन-सी 'मैं' थी जो यह सब सुन रही थी और न जाने वह भी कौन-सी 'मै' थी, जिसने पूछा था, "उसका नाम जानते हो?"

"हा-हां, आशिम है उसका नाम।"

दोनों हाथों से दीवार न थाम लेती तो निश्चय ही बेहोश हो गई होती। पसीने से तर हो आई थी। अनिल ने सहज भाव से पूछा, "तुम उसे जानती हो, अम्मी?"

मैंने तीव्रता के प्रतिवाद किया मानो चीख उठी हूं, "नहीं, नहीं, मैं किसी को नही जानती यहा।"

अनिल ने अब मेरी ओर देखा। मेरे श्वेत हो आए चेहरे को देखकर घबरा गया वह। बोला, "तुम्हारी तबियत खराब है, अम्मी, तुम लेट जाओ।"

बेचारा अनिल! क्या बताऊ उसे। अपने को बटोरकर इतना ही कहा, "नही बेटे! तबियत मेरी ठीक है, लेकिन तुम अब उससे बात मत करना। हमें अजनबियो से दोस्ती नहीं.. "

मैं अपना वाक्य पूरा ही नही कर पाई। उसने दीर्घ निश्वास खींचकर कहा, "अच्छा।"

उसका यह 'अच्छा' शब्द सुनकर मुझे आपकी याद आ गई। आपने भी तो उसी दिन इसी तरह कहा था, 'अच्छा' पर कहां आप, कहां यह बच्चा। मैं पागल हो उठी उसके मुह से यह शब्द सुनकर, चाहा कि दोनों हाथों से उसका गला घोटती रहू, घोटती रहू . लेकिन हुआ यह कि मैंने खींचकर उसे अपनी छाती में भर लिया और अपने को रोकने मे असमर्थ फूट-फूटकर रोने लगी।

जानते हो, दो क्षण मुझे क्या लगा था। लगा था, वह अनिल नहीं आशिम है और मै ताबड़तोड उसका मुह चूम रही हू .

कई दिन तक मैं सींखचों पर मुह टिकाए उसी दिशा में टकटकी बांधे देखती रही पर वह फिर नहीं आया एक सपना

भटकते-भटकते किसी शानदार बंगले मे पहुच गई हू। कैसी ऐयाशी कैसी प्रचुरता! पर यह चीख कैसी है, किसी बच्चे की मर्मातक चीख भागी-भागी मैं अदर जाती हू। देखती हू कि एक क्रूर यूवक एक आठ-नौ वर्ष के बच्चे को बेतों से पीट रह है, ''कबख्त, अगर अब कभी उधर पैर भी रखा तो जमीन मे गाड़ दूगा।''

बच्चा चीखता है, ''नहीं, नही, मैं नही जाऊगा। मुझे मारो मत मुझे मारो मत।''

पहचान लेती हू, वह क्रूर युवक मेरा देवर है। उसके पीछे खडी है मेरी सास। मे तड़पकर आगे बढती हूं और युवक के हाथ से बेंत छीन लेती हूं ''उस मासूम को क्यों मारते हो? अपराधी मै हू, मुझे मारो!''

वे सकपकाकर मेरी ओर देखते हैं, पहचान लेते हैं। दूसरे ही क्षण आशिम भागता हुआ मुझसे आ चिपकता है, और मेरी बाहो मे बेहोश हो जाता है..

मेरी सास चीख रही है, ''निर्लज्ज, कलंकिनी, तुझसे मरा नहीं गया! तेरी लाश पाकर हम कितने गौरवान्वित होते!''

तभी नींद खुल जाती है। अधेरे मे बार-बार आंखे फाड़ देखती रहती हू। सोचती रहती हूं, 'क्यों? क्यों आदमी अपने से ही छल करता है, अपने ही 'मै' से अजनबी हो जाता है ' जो नितात मेरा अपना है, जो प्यार का प्रतिरूप है, उसी-से वचित हू मैं। कारण कुछ भी रहा हो, कुती कर्ण के पास जा सकी थी, पर मैं .

उसी दिन सचालिका के पास गई। मैं बोली, ''आप मुझे दूर किसी पहाड़ी गाव मे भेज रही है न। मै तैयार हू आज ही जाने को। पर मेरे बच्चों को मुझसे अलग मत कीजिए। मै उनका अपमान नही होने दूंगी।''

मेरे दोस्त! मै अगले हफ्ते जा रही हू एक और जीवन जीने के लिए। न जाने क्यो आपको देखने की चाह उभर आई है मन मे। क्यों लगने लगे हैं आप अपने? इसी अपनेपन के कारण ही आपको दोस्त कहकर सबोधित किया है मैंने। मन दोस्त के सामने ही खोला जा सकता है। कैसा है यह अनोखा रिश्ता .सपनों से जुडा और आख खुली तो हाथ लगा एक विराट् शून्य फिर भी भरोसा मुझे है और वह मेरे अंदर से आया है बिना किसी के दखल के। जिस घोर यंत्रणा और संत्रास के दौर से मैं गुजरी हू उसने मुझे यही संपदा तो बख्शी है। यह मेरे अदर की गहराइयो मे समा गई है। इसे भौतिक नेत्रों से नही देखा जा सकता।

अच्छा! बाहर वर्षा होने लगी है, होनी चाहिए। चाहिए न ठूंठ में नई कोपले फोडने के लिए

—आपकी प्रतिमा उर्फ आयशा उर्फ सुरैया उर्फ प्रतिमा

अनिल कहता रहा, "वह बहुत अच्छा है। उसने मुझे चाकलेट दी थी। उसने पूछा था, 'वहां कोई प्रतिमा है?'

"मैंने एकदम कहा, 'हां, अब मेरी मम्मी का यही नाम है।'

"उसने पूछा, 'अब यही नाम है। पहले नही था?'

"मैंने कहा, 'पहले तो उनका नाम सुरैया बेगम था। जैसे मेरा नाम अनवर था। अब मे अनिल हू।'

"वह बोला, 'तब वह कोई और है, लेकिन क्या तुम मुझे उन्हे दिखा सकते हो?'

"मैंने कहा, 'हा-हा, उस खिडकी वाले कमरे मे रहते हैं हम। आओ मेरे साथ।'

" 'नहीं-नहीं, फिर आऊंगा।' कहता हुआ वह भाग गया था। वही आज फिर आया ."

न जाने वह कौन-सी 'मै' थी जो यह सब सुन रही थी और न जाने वह भी कौन-सी 'मै' थी, जिसने पूछा था, "उसका नाम जानते हो?"

"हा-हां, आशिम है उसका नाम।"

दोनों हाथो से दीवार न थाम लेती तो निश्चय ही बेहोश हो गई होती। पसीने से तर हो आई थी। अनिल ने सहज भाव से पूछा, "तुम उसे जानती हो, अम्मी?"

मैंने तीव्रता के प्रतिवाद किया मानो चीख उठी हूं, "नहीं, नही, मैं किसी को नहीं जानती यहां।"

अनिल ने अब मेरी ओर देखा। मेरे श्वेत हो आए चेहरे को देखकर घबरा गया वह। बोला, "तुम्हारी तबियत खराब है, अम्मी, तुम लेट जाओ।"

बेचारा अनिल। क्या बताऊं उसे। अपने को बटोरकर इतना ही कहा, "नही बेटे। तबियत मेरी ठीक है, लेकिन तुम अब उससे बात मत करना। हमें अजनबियो से दोस्ती नही .."

मै अपना वाक्य पूरा ही नहीं कर पाई। उसने दीर्घ निश्वास खींचकर कहा, "अच्छा।"

उसका यह 'अच्छा' शब्द सुनकर मुझे आपकी याद आ गई। आपने भी तो उसी दिन इसी तरह कहा था, 'अच्छा' पर कहां आप, कहां यह बच्चा। मैं पागल हो उठी उसके मुह से यह शब्द सुनकर, चाहा कि दोनों हाथों से उसका गला घोटती रहू, घोटती रहूं लेकिन हुआ यह कि मैने खींचकर उसे अपनी छाती में भर लिया और अपने को रोकने मे असमर्थ फूट-फूटकर रोने लगी।

जानते हो, दो क्षण मुझे क्या लगा था। लगा था, वह अनिल नहीं आशिम है और मैं ताबडतोड उसका मुंह चूम रही हूं...

कई दिन तक मैं सीखचों पर मुह टिकाए उसी दिशा में टकटकी बाधे देखती रही पर वह फिर नहीं आया एक सपना

. भटकते-भटकते किसी शानदार बंगले मे पहुच गई हू। कैसी ऐयाशी कैसी प्रचुरता। पर यह चीख कैसी है, किसी बच्चे की मर्मातक चीख भागी-भागी मैं अदर जाती हूं। देखती हू कि एक क्रूर यूवक एक आठ-नौ वर्ष के बच्चे को बेतों से पीट रह है, ''कमबख्त, अगर अब कभी उधर पैर भी रखा तो जमीन मे गाड दूंगा।''

बच्चा चीखता है, ''नही, नही, मैं नहीं जाऊंगा। मुझे मारो मत. मुझे मारो मत।''

पहचान लेती हूं, वह क्रूर युवक मेरा देवर है। उसके पीछे खडी है मेरी सास। मै तडपकर आगे बढती हूं और युवक के हाथ से बेंत छीन लेती हू ''उस मासूम को क्यो मारते हो? अपराधी मै हू, मुझे मारो।''

वे सकपकाकर मेरी ओर देखते हैं, पहचान लेते हैं। दूसरे ही क्षण आशिम भागता हुआ मुझसे आ चिपकता है, और मेरी बांहों मे बेहोश हो जाता है.

मेरी सास चीख रही है, ''निर्लज्ज, कलंकिनी, तुझसे मरा नही गया! तेरी लाश पाकर हम कितने गौरवान्वित होते।''

तभी नीद खुल जाती है। अंधेरे में बार-बार आंखे फाड़े देखती रहती हू। सोचती रहती हूं, 'क्यो? क्यों आदमी अपने से ही छल करता है, अपने ही 'मै' से अजनबी हो जाता है..' जो नितांत मेरा अपना है, जो प्यार का प्रतिरूप है, उसी-से वचित हू मैं। कारण कुछ भी रहा हो, कुती कर्ण के पास जा सकी थी, पर मैं

उसी दिन संचालिका के पास गई। मैं बोली. ''आप मुझे दूर किसी पहाडी गाव मे भेज रही है न। मै तैयार हू आज ही जाने को। पर मेरे बच्चो को मुझसे अलग मत कीजिए। मैं उनका अपमान नहीं होने दूगी।''

मेरे दोस्त! मैं अगले हफ्ते जा रही हू एक और जीवन जीने के लिए। न जाने क्यों आपको देखने की चाह उभर आई है मन मे। क्यो लगने लगे है आप अपने? इसी अपनेपन के कारण ही आपको दोस्त कहकर संबोधित किया है मैंने। मन दोस्त के सामने ही खोला जा सकता है। कैसा है यह अनोखा रिश्ता...सपनों से जुडा और आंख खुली तो हाथ लगा एक विराट् शून्य फिर भी भरोसा मुझे है और वह मेरे अदर से आया है बिना किसी के दखल के। जिस घोर यंत्रणा और सत्रास के दौर से मै गुजरी हू उसने मुझे यही संपदा तो बख्शी है। यह मेरे अंदर की गहराइयो में समा गई है। इसे भौतिक नेत्रो से नही देखा जा सकता।

अच्छा! बाहर वर्षा होने लगी है, होनी चाहिए। चाहिए न ठूठ में नई कोपले फोडने के लिए

—आपकी प्रतिमा उर्फ आयशा उर्फ सुरैया उर्फ प्रतिमा

मृत्युंजय

उस दिन कैंप मे जाने पर अचानक एक पुराने मित्र से भेट हो गई। पास जाकर देखता हूं— उसका चेहरा रूखा और झुर्रियों से भरा हुआ है। शरीर पर के कपडे न केवल मैले है बल्कि अनुपयुक्त भी हैं। पैर सूजे हुए हैं और क्षत-विक्षत भी। पास ही उसका बेटा बैठा है। वह भी उसी की तरह घायल और श्रीहीन है। उसकी कातर दृष्टि दिल मे कसक-कसक उठती है।

मुझे एकाएक देखकर मेरा मित्र एक क्षण तो स्तब्ध ही रहा फिर मुसकराया, "तुम.. "

मैने द्रवित होकर कहा, "तुम्हारी यह दशा . ?"

उसने अपने को संयत कर लिया था। वह हॅस पडा, बोला, "मुझे बधाई दो, मेरे दोस्त, मै जिंदा हूं।"

वहां तब बड़ी भीड थी और शोर मच रहा था— क्रोध, खीज और रुदन से भरा शोर। उसी के बीच अनेक युवक और युवतिया तत्परता से सैनिक की भांति व्यवस्था मे लगे थे। उन्हीं को घेरकर कभी कोई परिवार तेजी से बोलने लगता था, कभी कोइ व्यक्ति अपने प्रियजनो के बारे में जानने को व्याकुल प्रश्न पर प्रश्न करके उन्हें परेशान कर देता था। लेकिन दूसरी ओर कुछ ऐसे व्यक्ति भी थे जो सूजे हुए पैर और फटी हुई आंखें लिए इधर-उधर कोनो मे बिखरे पडे थे। वे न बोलते थे, न उनकी आखो में आसू थे। वे बस, सिर नीचा किए धरती से बातें करते या फिर सिर उठाकर शून्य मे ताक लेते थे। वह शून्य सूरज की धूप ओर चीलों से भरा था। कभी-कभी हवाई जहाज की घर्र-घर्र पक्षी-दल में हलचल पैदा कर देती, तब कैंप के रोते-हँसते बच्चे चुप होकर ऊपर देखने लगते।

मैं मान लूंगा कि मैं उलझन मे पड गया था। क्या कहू? कैसे कहूं? हम दोनो बहुत दिन तक एक ही शहर में एक साथ रहे थे। एक ही महकमे मे काम करते थे। इसी लिए हमारी मित्रता साधारण जान-पहचान से काफी आगे बढ गई थी। वह सुदूर पश्चिम का रहने वाला था और उसका शरीर इतना सुगठित था कि घर में स्वास्थ्य की चर्चा करते समय हम उसको आदर्श मानते थे। वही मित्र आज बुढापे को लजा रहा था। मैने साहस बटोरा, पूछा, "तुम थे कहां?"

"गाव में।"

"यहा कब आए?"

''कल रात''

''पैदल?''

''हां।''

मै फिर मौन हो गया। एक अव्यक्त तरलता मुझे बेचैन कर रही थी और मै बोलने को शब्द नही खोज पा रहा था। किसी तरह कहा, ''यहा ठहरे हो?''

''अभी तो यही हू।''

''घर चलो।''

वह कृतज्ञता से मुसकराया। बोला, ''यह क्या घर नहीं है?''

मैंने कहना चाहा पर कह सकू इससे पूर्व ही कोई चीत्कार कर उठा। तब जो अब तक नहीं देख पाया था, वह देखा। उसके पीछे एक कोने में एक वृद्ध पुरुष पैर सिकोडे लेटे थे। उनके सूजे हुए पंजे ऊपर तक फटे हुए थे और उनमे रक्त चमक आया था। उनकी आंखें बिलकुल अदर धंस गई थीं और कोए सूज रहे थे। वे कभी-कभी तेजी से 'आह' करते और फिर एक हाथ से दिल को सहलाने लगते। कभी-कभी दोनो हाथों से मुंह ढककर चीत्कार कर उठते। उनका यही चीत्कार सुनकर मै चौक पडा था। मैंने अब अचरज से उन्हें देखा, वे मेरे मित्र के पिता थे। तब एक क्षण मे असख्य चित्र मेरे नेत्रो में उभरते चले गए। वे उस सुखी परिवार के नेता थे जिसमे शक्तिशाली पुत्र और लावण्यमयी पुत्रियां थीं, जिस परिवार की पुत्रवधुएं अपने पुत्रो की तुलना शकुतला के पुत्र 'भरत' से करने को आतुर रहा करती थीं। उनके शिशु सचमुच सिंह के दांत गिनने वाले भरत के समान सुंदर और दुस्साहसी थे।

मुझे होश आया तो मै उनकी ओर बढा पर तभी देखा—चीत्कार बद हो गया है और वे एक ओर लुढक गए है। मैंने शीघ्रता से मित्र से कहा, ''देखो, ये सज्ञाहीन हो रहे हैं, शायद इन्हें दौरा पड़ गया है, मैं डाक्टर को देखता हूं। तब तक तुम इनके मुंह मे पानी डालो।''

और मै शीघ्रता से डाक्टर के कमरे की ओर मुडा पर तभी मित्र ने मेरा हाथ पकड लिया और कहा, ''उन्हें इसी तरह पड़े रहने दो, मेरे दोस्त।''

''क्यों ..?''

''इन्हीं कुछ क्षणों में उन्हे शांति मिलती है, उसे मत छीनो।''

''पर . ?''

मैंने देखा—उसकी पुतलियां घूमीं और सजल हो उठीं, लेकिन उस ओर से असपृक्त वह पूर्वत: मुसकराया, बोला, ''मेरे दोस्त। इनकी बेहोशी में ही इनका कल्याण है। इन्हे इसी तरह रहने दो।''

मेरे भीतर तूफान घुमड रहा था। मैंने पास आकर उससे कहा, ''आखिर क्या बात है? और लोग भी तो नहीं दिखाई दे रहे।''

''तीन पीढिया तुम्हारे सामने है।'' उसने उत्तर दिया—''और क्या चाहते हो?''

"पर तुम्हारी पत्नी, बहिने, बच्चे, भाई, वे क्या कहीं और चले गए है?"

"हा।"

"कहां?"

"जहां एक दिन सभी को जाना होता है।"

"क्या ?"

वह फिर मुसकराया। उसका स्वर यथापूर्व दृढ था। वह अपनी वेदना को अपने अदर ही झेल रहा था। उसने कहा, "वे सभी भाग्यशाली थे, मुक्त हो गए।"

मै अबूझ-सा एक बार फिर उसके पिता की ओर मुडा, देखा—उनके हाथ धीरे-धीरे हिल रहे हैं और वे उन्हे उठाने के लिए प्रयत्नशील है। मैंने शीघ्रता से आगे बढकर धीरे से उनके हाथ उठाए और छाती पर रख दिए। जैसे भूकप आ गया, तीव्रता से वे चीत्कार उठे—"यह क्या हुआ .आखिर यह क्या हुआ?"

अपने को सहेजने में असमर्थ मै उनके पास बैठ गया, चाहा उनका सिर गोद में रख लू कि मित्र ने दृढता से कहा, "नहीं दोस्त, इन्हे मत छेडो। इस भावुक संवेदना के कारण ही इनकी यह दशा हो गई है। इन्हें शक्ति चाहिए, सहानुभूति नहीं। इनके कान मे जोर से कहो—आपने बहुत अच्छा किया। आप सचमुच वीर है। आप पर देश को गर्व है।"

मैं यंत्रवत झुका, बोला, "आपने बहुत अच्छा किया। आप सचमुच वीर है। आप पर देश को गर्व है। वह आपको कभी नहीं भूलेगा।"

जैसे किसी ने जादू कर दिया। वे कांपते हाथ उठे, आखें खुलीं। उन्होने मुझे दृढता से पकड लिया, कहा, "सच! तुम सच कहते हो?"

"जी हां, मै सच कहता हूं।"

"तो मैंने जो कुछ किया, ठीक किया।" वे उठने की कोशिश कर रहे थे और साथ ही देखने की भी। सहसा उनकी दृष्टि मेरी दृष्टि से मिली, कितनी निरीह और कितनी त्रस्त! मैंने कहा, "जी हा। आपने जो कुछ किया वह बहुत अच्छा किया। आपने देश की अमूल्य सेवा की है। आप सचमुच. "

तब तक उन्होने मुझे पहचान लिया था। एकाएक वे हर्ष से चिल्ला उठे—"तुम .."

उन्होने मुझे छाती से लगा लिया। मुझे लगा जैसे उनका हृदय फटने वाला है। वह इतनी तीव्रता से धडक रहा था कि मैं समझ नहीं पा रहा था कि यह दिल की धडकन है अथवा तूफान की। उन्होंने अटक-अटककर कहा—"तुम समझते हो, मैंने ठीक किया था?"

"जी हां।" मैंने कहा, "आपने बहुत अच्छा किया।"

उनके जैसे प्राण लौटे तुम बहुत अच्छे हो बहुत अच्छे

मैंने उनकी कमर सहलाते हुए कहा चाचाजी मेरे घर चलोगे?

वे कापे, ''घर . ।''

''हां चाचाजी, यहा तो. ''

पर मै अपना वाक्य पूरा भी नही कर पाया था कि वे फिर चीत्कार कर उठे, ''घर मेरे बच्चे! यह क्या हुआ, आखिर क्या हुआ?''

और वे सुबक-सुबककर रोने लगे। मै हतबुद्धि उन्हें देखता ही रह गया। मित्र बोले, ''उन्हे यों ही छोड़ दो। वे अब फिर सज्ञाहीन होने वाले है और यही उनके लिए अच्छा है।''

मैं बरबस उठा और मित्र के पास जा बैठा। कई क्षण उन्हे देखता रहा। वे धीरे-धीरे संज्ञाहीन हो रहे थे। हाथ लटक गए, आखें पथरा गई और सास रुक-रुककर आने लगी। मैंने धीरे से मित्र से पूछा, ''आखिर यह सब क्या हुआ? क्या आप लोगो के साथ सेना नहीं थी? आप लोग रेल से क्यों नही आए? उन दिनों आप कहा थे?''

उसने मेरी ओर देखा, दो क्षण देखता रहा। फिर बिना किसी भूमिका और भावुकता के वह बोलने लगा, ''मेरे दोस्त, हुआ यह.. उन दिनो हम सब पिताजी के साथ गाव चले गए थे .''

''गांव क्यो?''

''क्योंकि हमे विश्वास था कि शहर की आग गांव मे नहीं पहुंच सकती। यह विश्वास आधारहीन नहीं था। देश में जो हिंसा और घृणा का वातावरण बन गया था, उसके बावजूद गावो मे शांति थी। यद्यपि वहा पर उन लोगो का प्रबल बहुमत था, फिर भी वहा कभी सांप्रदायिक दगे नही भडके। भड़क ही नही सकते थे। हम लोग उन्ही के समान धरती की संतान थे। एक ही मिट्टी से हमारा शरीर बना था। लेकिन सूझ-बूझ और समझ में वे हमारे सामने बच्चे थे। यही हमारा सबसे बडा सबल था। वे सदा अपनी समस्याएं लेकर हमारे पास आते थे और हमारा आदर करते थे। खानदान के वे बधन जो देश के इस भाग में हैं, उधर नहीं थे। जो थे, वे भी अब टूटते जा रहे थे। विशेषकर नई पौध मे इन बधनो का कोई मूल्य नहीं रह गया था ।''

वह फिर मौन हो गया। मानो कुछ याद करना चाहता हो। दो क्षण बाद धीरे-धीरे बोला, ''लेकिन धर्म उनके लिए सामाजिक वस्तु है, व्यक्तिगत नही। इसी कारण जब देश मे 'धर्म खतरे मे है' की पुकार गूज उठी, तब, वह प्रत्येक व्यक्ति जो उनके धर्म का नहीं था, स्वभावत: उनका दुश्मन बन गया। फिर भी इस प्रक्रिया मे काफी देर लगी। और मै अपने गाव वालों की प्रशंसा करूंगा कि वे बहुत दिनों तक अपने-आपको उस धारा मे बहने से रोके रहे। वे जानते थे कि देश आतकवाद और हिंसा के चक्रव्यूह मे फस गया है। उसके समाचार भी वहा पहुंचते रहते थे। समाचार अपने जन्म-स्थान से जितनी दूर की यात्रा करते है, सत्य से उतनी ही दूर हट जाते है। फिर भी उन लोगों ने कहा-- कहीं कुछ भी हो हम दोस्त हैं और उस दोस्ती को कायम रखेंगे उन्होंने ऐसा करने के पयत्न भी किए उनके धर्म के प्रहरी उनकी भावनाओं को

उभारते थे, परंतु वे फिर भी हमे दुश्मन नही समझ पा रहे थे। हां, धीरे-धीरे युवको मे कटुता पैदा होने लगी थी।''

मैंने कहा, ''उनका खून गरम होता है।''

''और गरम खून में गर्मी पैदा करना बडा आसान होता है। गरम लोहे को किसी भी सांचे में ढाला जा सकता है। ये युवक गरम लोहे के समान थे, इसी कारण स्वार्थी नेता अतत. उन्हें अपने मार्ग पर लाने में सफल हो गए ।''

मैंने धीरे से कहा, ''मित्र, क्या केवल धर्म के कारण ही यह सब हुआ?''

वह मुसकराया, ''मै जानता हूं, तुम क्या कहना चाहते हो? हमारी अमीरी और उनकी गरीबी भी इसका कारण है. ।''

''और दूसरों को नीचा देखने की हमारी प्रवृत्ति भी ''

''तुम ठीक कहते हो,'' उसने कहा, ''इसी कारण वह समुदाय जो ऊपर से शात था अंदर ही अंदर डगमगा गया। एकाएक जब भूचाल आया तो सबकी आशा के विपरीत प्रेम और सौहार्द की दीवार भरभराकर गिर पड़ी।''

धीरे-धीरे वह इस प्रकार बोलने लगा था जैसे हम किसी सभा में बैठे हुए शास्त्रीय विषयो पर वाद-विवाद करने लगे हों। वह दुखी था, त्रस्त भी। पीडा ने उसे पूरी तरह ग्रस लिया था। इसी लिए सच्ची बात कह रहा था।

तभी वृद्ध फिर पुकार उठे, ''अरे, यह क्या हुआ? मेरी बच्चियो को यह क्या हुआ?''

''बहुत अच्छा हुआ, पिताजी।'' उसने दृढता से कहा, ''कुछ लोग कहते है, पंजाब ने सदा देश की पीठ पर छुरा भोंका है, सदा राष्ट्रीय आदोलन को कुचला है, पर आज आपने बता दिया है कि पंजाबी वह कुछ कर सकता है, जो कोई और करने की कल्पना तक नहीं कर सकता।''

वृद्ध के हाथ लडखड़ाए, उन्होने दीवार को थाम लिया और चाहा कि उठे, उठते-उठते वे फुसफसाए, ''सच बेटा? क्या सच?

लेकिन यह सब क्षणिक था, वृद्ध ने फिर एक सर्द आह भरी। फिर संज्ञाहीन होने लगे और वह बच्चा जो अब तक चुपचाप बैठा हुआ था, पिता के घुटने पर सर रखकर रोने लगा। मित्र ने उसे पुचकारकर कहा, ''क्यो हरीश, क्या बात है, बेटा?''

हरीश ने रोते-रोते कहा, ''मा .''

''अरे, अरे, तू बहादुर होकर इतना कातर होता है, बाबा को तो देख।''

हरीश ने गरदन उठाई। उसने कहा, ''आंसू पोछ।'' हरीश ने आंसू पोंछ लिए। उसने कहा, ''अब हँस!''

हरीश हँस पडा। वह भी और मै भी, पर जैसे ही हँसी रुकी मैंने देखा वह स्वय रोने लगा है। मैंने अचकचाकर कहा, ''इसकी मां कहां है?''

कई क्षण लगे उसे अपने को बटोरने मे। उसने अपने को संभाल लिया। पहले

की तरह बोला— धीर गंभीर स्वर में, "बात जब बहुत बिगड गई और हवा के कण कण मे विष फैल गया तो पिताजी अपनी ओर के कई वृद्ध पुरुषो को लेकर उनके पास पहुचे, परतु वहा जाकर पता लगा कि दुनिया सचमुच बदल चुकी ह और उनके बचने की कोई आशा नही है। ये लोग घबराए, पूछा, 'आखिर हमने क्या किया है।'

"जवाब मिला, 'बात हमारे और तुम्हारे बीच मे नही रही है। अब दो कौमो के मरने-जीने का सवाल है। जो बलवान होगा, वही जिएगा।'

"मेरे पिता ने कहा, 'लेकिन हम तो ।'

"जवाब मिला, 'हम कुछ नही जानते, तुम लोगो ने बिहार मे, अमृतसर मे, लाहौर में और. '

"आगे विवाद बेकार था। पानी सर से उतर चुका था। पिताजी लौट आए। बाहर आकर उन्होने एक वृद्ध सज्जन को खडे देखा। उन्होंने हमे गोद मे खिलाया था। वे दुखी स्वर मे बोले, 'यह सच है, बात हमारे हाथ में नहीं रही। तुम चुपचाप यहां से भाग जाओ।'

"पिताजी ने उनकी आंखों मे झाकते हुए कहा, 'भागकर कहा जा सकते है जगल की आग चारों ओर फैल चुकी है।'

"वृद्ध ने दोनों हाथ पिताजी के कधो पर रखकर धीरे से कहा, 'मै अकेला हू। मैं केवल तुम्हारे परिवार को अपनी गाड़ियों में ले जा सकता हूं, लेकिन .'

"बात काटकर पिताजी बोले, 'सुनो, मैं कही नही जाऊगा, यहीं रहूंगा। इसी मिट्टी में हम पैदा हुए हैं, इसी में मिल जाने का हमारा अधिकार हमसे कोई नहीं छीन सकता।'

"और वे लौट आए। प्रतिदिन समाचार आते थे—अमृतसर में स्त्रियां को नगा करके उनका जुलूस निकाला गया। सडक पर खुले आसमान के नीचे उनके साथ बलात्कार किया गया। उनकी छातिया काट ली गई। लाहौर मे बच्चो का सिर भालो की नोक मे छेदकर शहर में घुमाया गया। जम्मू में गाड़ी रोककर सभी स्त्री-पुरुषो को मौत की घाट उतार दिया गया।

"तीसरे दिन उन लोगों का भी संदेश आ गया, 'अपनी लडकिया सौंप दो और हमारे धर्म में आ जाओ।'

"हमारे हितैषी वृद्ध ने कहलवाया, 'ये शर्तें मान लेने पर निकलने मे आसानी होगी।' परंतु पिताजी ने जवाब भेज दिया, 'जिंदगी भगवान की अमानत है, मैं उसका सौदा नहीं कर सकता।'

"उसी रात हमला हुआ। उनमें अधिकतर लोग बाहर के थे। पुलिस और फौज उनके साथ थी। वे सभी आधुनिक शस्त्रो से सुसज्जित थे।"

वह फिर दो क्षण मौन हो रहा। युगों जितने वे क्षण कितने भयानक थे, पर तभी उसने अपने को सहेज लिया, बोला, "हम लोग भी सजग थे। जी तोडकर लडे। कुछ

लोग भाग निकले। भागती हुइ नारियां पकडी गई और उनके साथ वही सलूक हुआ जो कोई नर पिशाच कर सकता है। पिताजी ने मुझे बुलाकर कहा—'मेरे परिवार की एक भी नारी उनके हाथ नही पड सकती!'

''मैने जवाब दिया, 'मै जीवन के अतिम क्षण तक उनकी रक्षा करूंगा।'

''वे बोले, 'और अंतिम क्षण के बाद?'

''मैं हठात् और उत्तर नही दे सका। वे मुसकराए बोले, 'बेटा, अंतिम क्षण आने से पहले ही उनका प्रबध करना होगा। हमें उन्हे गोली से उडा देना होगा।'

''मै स्वीकार करूगा, मै कांप उठा था। मैने पिताजी की आखो मे झाका। वे मुसकरा रहे थे। मैने यत्रवत फौलादी दृढ़ता से कहा, 'मैं आपकी आज्ञा का पालन करूंगा, पिताजी।'

''एक एक करके हमारे साथी गिरते जा रहे थे। मैने अपने दोनो भाइयो को गिरते देखा। मैंने देखा कि मेरा भतीजा पागलो की तरह राइफल चला रहा है, पर तभी उधर से एक गोली उडी और वह चिरनिद्रा में सो गया। पिताजी चिल्लाए, 'जल्दी करो मेरे बेटे।'

''दौडता हुआ मैं अंदर पहुंचा, मैंने सबसे पहले अपनी पत्नी को गोली मार दी। वह तब दोनो हाथो से मुह ढके भगवान को पुकार रही थी। फिर मैंने अपनी छोटी भाभी के प्राण लिए और फिर छोटी बहन के। तभी मेरी दूसरी बहन दौड़ी हुई आई, बोली, 'भैया, बडी भाभी का पता नही लग रहा है।'

''मैंने कहा, 'राज, तुम अपनी चिंता करो।'

''राज हॅसी, 'मैं तैयार हूं, गोली छोडो।' ''

यहां आकर उसका गला भर आया। वाणी रुंध गई। क्षण-भर उसने अपने पिता की ओर देखा, फिर सकुचाते हुए कहा, ''और मैंने राज को भी गोली मार दी। वह तब मुसकरा रही थी। कहां से आ जाता है यह साहस सकट के क्षणों में!''

उसने फिर अपने को सम्हाला, बोला, ''पिताजी ने यह देखकर सुख की सास ली। वह इनकी अंतिम सुख की सास थी। वे लोग हर्ष से चिल्ला रहे थे और आग लगा रहे थे, परतु मुझे बड़ी भाभी की तलाश थी। आग के प्रकाश में मैंने देखा, बडी भाभी घर के सब बच्चों को घेरे अपने कमरे में बैठी है। मुझे देखकर वे मुस्कराई, बोली—'तुम जिन्दा हो, लो इन्हें सम्हालो। मै इसी आग में जलना चाहती हूं।'

''मैने कहा, 'जलने का समय नही है भाभी, वह आ पहुंचे हैं। मैं तुम्हें गोली से मार देता हूं।'

उसका साहस जवाब दे रहा था। वह तेजी से अपने पुत्र की कमर सहलाने लगा। मैने अपने आंसू पोंछकर धीरे से कहा, ''बच्चे कहां है?''

''बच्चे।'' वह फुसफुसाया, ''बच्चों को उन्होने भालों की नोक पर रखकर घुमाया था। हरीश और अविनाश को मैं बचा सका था। वह भी उन वृद्ध की सहायता

से। न जाने कहा से आकर वे इन दोनों को उठाकर ले गए और फिर एक दिन चुपके से कैंप में छोड गए। लेकिन अविनाश रास्ते की थकावट न सहकर एक दिन सडक के किनारे सदा के लिए सो गया.. ''

''तो आप निकल भागे थे?''

''नही, नही।'' उसने कहा, ''हम भागे नही। लडते-लडते जब हमारे पाच सौ प्राणियों में से पचास बच गए थे तो फौज ने हमे एकत्रित करके पास के नगर के एक स्कूल मे बंद कर दिया। हम शरणार्थी बना दिए गए और सरकार हमारी रक्षा का ढिढोरा पीटने लगी। वही से एक दिन एक काफिले के साथ भारत की ओर बढे ''

सहसा उसकी दृष्टि पिताजी पर पडी। वे होश मे आ रहे थे और दर्द-भरे स्वर मे पुकारने लगे, ''यह क्या हुआ? मेरी बच्चिया? यह क्या हुआ ।''

परंतु इस बार मित्र ने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। मुझे अपने पैर दिखाते हुए बोला, ''आगे की कहानी यहां लिखी हुई है। यह अकेले मेरी कहानी नही है, मेरे देश की कहानी है, आज मेरा देश घायल है, मेरे दोस्त. ''

फिर एक गहराता मौन हम दोनो के बीच आकर ठहर गया। मेरे अंतर मे घंटिया बजने लगी थी। कैंप का शोर कभी तीव्र हो उठता, कभी दब जाता। तभी सहसा मेरे मित्र ने कहा, ''एक काम करोगे, दोस्त?''

''कहो।''

''दस रुपये मुझे उधार दे दो।''

मैंने चुपके से बिना कुछ कहे दस रुपये का एक नोट निकाला और उसके हाथ पर रख दिया। फिर उसे अपने साथ ला सकने मे असमर्थ लौट आया।

अगले दिन जब मै कुछ कपडे और दूसरा सामान लेकर वहा पहुचा तो देखा—कैंप के आगे सडक पर कपडा बिछाए मेरा मित्र बैठा है। उसके आगे केले के गुच्छे, मूंगफली और मीठी गोली के डिब्बे रखे है .

मैं एक साथ करुणा और प्रशंसा से भर आया। मैंने उसके अदम्य उत्साह की मन ही मन प्रशंसा की और पूछा, ''पिताजी कहां हैं?''

उसने जवाब दिया—''डाक्टर उन्हें अस्पताल ले गए हैं। उन्होंने विश्वास दिलाया है कि वे उनके दु:ख दूर करने की पूरी कोशिश करेंगे। परंतु उनके दु:ख तो अब उनके प्राणो के साथ ही दूर होंगे।''

मैंने एकाएक कुछ जवाब नहीं दिया। चुपचाप ग्राहकों को देखने लगा। सच तो यह है कि मुझे वार्तालाप का कोई ठीक-ठीक सूत्र नहीं मिल रहा था। इसी लिए मैंने कल वाली प्रार्थना फिर दोहरा दी, ''आप लोग मेरे घर चलकर रहे तो ।''

उसने मेरी आंखों मे झांका। फिर अद्भुत शांत स्वर में कहा—''तुम्हारे घर को देखकर मुझे अपने घर की याद आएगी। मेरे दोस्त, तब क्या मैं अपने लडखडाते हुए पैरो पर खडा रह सकूंगा ?''

मैं जिंदा रहूंगा

दावत कभी की समाप्त हो चुकी थी, मेहमान चले गए थे और चाद निकल आया था। प्राण ने मुक्त हास्य बिखेरते हुए राज की ओर देखा। उसको प्रसन्न करने के लिए वह इसी प्रकार के प्रयत्न किया करता था। उसके लिए वह मसूरी आया था। राज की दृष्टि तब दूर पहाडो के बीच नीचे जाने वाले मार्ग पर अटकी थी। हलकी चांदनी मे वह धुधला बल खाता मार्ग अतीत की धुंधली रेखाओ को और भी धुधला कर रहा था। सच तो यह है कि तब वह भूत और भविष्य मे उलझी अपने मे खोई हुई थी। प्राण के मुक्त हास्य से वह कुछ चौंकी। दृष्टि उठाई, न जाने उसमे क्या था, प्राण कांप उठा, बोला, ''तुम्हारी तबीयत तो ठीक है?''

राज ने उस प्रश्न को अनसुना करके धीरे से कहा, ''आपके दाहिनी ओर जो युवक बैठा था, उसको आप अच्छी तरह जानते हैं?''

''किसको? वह जो नीला कोट पहने था?''

''हा, वही।''

''वह किशन के पास ठहरा हुआ है। किशन की पत्नी नीचे गई थी, इसी लिए मैंने उसे भी यहां आने को कह दिया था। क्यों, तुम उसे जानती हो?''

''नहीं, नहीं, मैं वैसे ही पूछ रही थी।''

''मैं समझ गया। वह दिलीप को बहुत प्यार कर रहा था। कुछ लोग बच्चो से बहुत प्रेम करते है।''

''हां, पर उसका प्रेम 'बहुत' से कुछ अधिक था।''

''क्या मतलब?''

''तुमने तो देखा ही था, दिलीप उनकी गोद में से उतरना नही चाहता था।''

प्राण ने हँसते हुए कहा, ''बच्चा सबसे अधिक प्यार को पहचानता है। उसका हृदय शरत् की चांदनी से भी निर्मल होता है।''

तभी दोनों की दृष्टि सहसा दिलीप की ओर उठ गई। वह पास ही पलग पर मखमली लिहाफ ओढे सोया था। उसके सुनहरे घुंघराले बालो की एक लट मस्तक पर आ गई थी। गौर वर्ण पर उसकी सुनहरी छाया चद्रमा के प्रकाश के समान बडी मधुर लग रही थी। बच्चा सहसा मुसकराया। राज फुसफुसाई, ''कितना प्यारा है!''

प्राण बोला, ''ऐसा जान पडता है कि शैशव को देखकर ही किसी ने प्यार का आविष्कार किया था।''

दोनो की दृष्टि मिली। दोनो समझ गए कि इन निर्दोष उक्तियों के पीछे कोई तूफान उठ रहा है। पर बोला कोई कुछ नही। राज ने दिलीप को प्यार से उठाया और अदर कमरे में ले जाकर लिटा दिया। मार्ग मे जब वह कधे से चिपका हुआ था तब राज ने उसे तनिक भींच लिया। वह कुनमुनाया पर पलग पर लेटते ही शात हो गया। वह तब कई क्षण खडी-खडी उसे देखती रही। लगा, जैसे आज से पहले उसने बच्चों को कभी नहीं देखा. पर शीघ्र ही उसका आनद भंग हो गया। प्राण ने आकर कहा "अरे! ऐसे क्या देख रही हो, राज?"

"कुछ नहीं।"

वह हँसा. "जान पडता है, प्यार मे भी छूत होती है।"

राज ने वहा से हटते हुए धीरे से कहा, "सुनिए, अपने उन मित्र के मित्र को अब यहां कभी न बुलाइए।"

इन शब्दों में प्रार्थना नही थी, भय था। प्राण की समझ में नही आया। चकित सा बोला, "क्या मतलब?"

राज ने कुछ जवाब नहीं दिया। वह चुपचाप बाहर चली गई और अपने स्थान पर बैठकर, पहले की भांति उस बलखाते हुए मार्ग को देखने लगी। नीचे कुलियों का स्वर बद हो गया। ऊपर बादलों ने सब कुछ अपनी छाया मे समेट लिया था। चंद्रमा का प्रकाश भी उसमे इस तरह घुल-मिल गया था कि उनकी भिन्नता रहस्यमय हो उठी थी। राज को लगा. बादलो की वह धुंध उसके अंदर भी प्रवेश कर चुकी है और उसकी शाति को लील गई है। सहसा उसकी आंखे भर आई और वह एक झटके के साथ कुरसी पर लुढककर फूट-फूटकर रोने लगी। प्राण सब कुछ देख रहा था। वह न सकपकाया, न क्रुद्ध हुआ। उसी तरह खडा हुआ उस फूटते आवेग को देखता रहा। जब राज के उठते हुए निःश्वास कम हुए और उसने उठकर आखे पोंछ डाली, तब उसने कहा, "दिल का बोझ उतर गया? आओ तनिक घूम आएं।"

राज ने भीगी दृष्टि से उसे देखा। एक क्षण ऐसी ही देखती रही। फिर बोली, "प्राण, मैं जाना चाहती हूं।"

"कहां?"

"कहीं भी।"

प्राण बोला. "दुनिया को जानती हो? क्षण-भर पहले यहां सब कुछ स्पष्ट था पर अब नही है। सब कुछ बादलो की धुंध में खो गया है।"

"मै भी इस धुध में खो जाना चाहती हूं।"

प्राण ने दोनों हाथ हवा में हिलाए और गभीर होकर कहा, "तुम्हारी इच्छा! तुम्हे किसी ने बाधा नही है, जा सकती हो।"

राज उठी नहीं। उसी तरह बैठी रही और सोचती रही। रात आकर चली गई उसका सोचना कम नहीं हुआ, बल्कि और भी गहरा हो उठा। उसने दिन-भर दिलीप

को अपने से अलग नही किया। स्वय ले जाकर माल पर झूले मे झूला लाई। स्वय घुमाने ले गई और फिर खिला-पिलाकर सुलाया भी स्वय। बहुत देर तक लोरी सुनाई थपथपाया, सहलाया। वह सो गया, तो रोई और रोते-रोते बाहर बरामदे में जाकर अपने स्थान पर बैठ गई। वही चद्रमा का धुंधला प्रकाश, वही बादलों की धुध, वही प्रकृति की भाति ऊपर अपूर्व शाति और अदर तूफान की गरज। प्राण ने आज रात को कुछ भी न कहने का प्रण कर लिया था। वह उसकी किसी इच्छा मे बाधा नहीं बना। अब भी जब राज दृष्टि गडाए उस बलखाते मार्ग को ढूढने की विफल चेष्टा कर रही थी वह कुरसी की पीठ पर हाथ रखे हुए खडा था। तभी लगा, कोई जीने में आ रहा है। राज एकाएक बोल उठी, ''वे आ गए।''

''कौन?''

''आपके मित्र के मित्र .''

वाक्य पूरा भी न हो पाया था कि वे मित्र बरामदे मे आते हुए दिखाई दिए। प्राण ने देखा—वे अकेले नही है, उनके साथ एक पुरुष तथा एक नारी भी है। दोनो सभ्य लगते है। नारी विशेष सुदर है, पर इस समय वे अतिशय गंभीर हैं। उनकी आंखे बताती है कि वे व्यग्र भी है। प्राण उन्हे देखकर कांपा तो, पर आगे बढकर उसने उनका स्वागत किया। मुसकराकर बोला, ''आइए, आइए, नमस्ते! किशोर नही आए?''

''जी, किशोर नहीं आ सके।''

''बैठिए, आइए! आप इधर आइए।''

बैठ चुके तो प्राण ने अपरिचितो की ओर देखकर पूछा, ''आपका परिचय।''

''यह मेरी बहन है और यह बहनोई।''

ओह! प्राण मुसकराया, हाथ जोड़े, दृष्टि मिली, जैसे कुछ हिला हो। फिर भी सभलकर बोला, ''आप आजकल कहां रहते है?''

मित्र ने दीर्घ निःश्वास लेकर कहा, ''कहा रहते! विधाता ने ऐसा उखाडा है कि कही जमते नही बनता।''

प्राण बोला, ''हां भाई! वह तो जैसा हुआ, सभी जानते हैं, पर उसकी चर्चा किससे करें।''

और फिर मुडकर राज से, जो बुत बनी बैठी थी, कहा, ''अरे भई, चाय-वाय तो देखो।''

मित्र एकदम बोले, ''नहीं, नहीं, चाय के लिए कष्ट न करें। ये तो एक बहुत आवश्यक काम से आए है।''

प्राण बोला, ''कहिए।''

मित्र कुछ झिझके। प्राण ने कहा, ''शायद एकात चाहिए।''

''जी।''

''आइए उधर बैठेंगे।''

वह उठा और काने मे पडी हुई एक कुरसी पर जा बैठा। मित्र भी पास की दूसरी कुरसी पर बैठ गए। एक क्षण रुककर बोले, ''क्षमा कीजिए, आप से एक प्रश्न पूछता चाहता हू, है तो वह बेहूदा ही।''

''कोई बात नही,'' प्राण मुसकराया, ''प्रश्न पूछना कभी बेहूदा नहीं होता।''

मित्र ने एकदम सकपकाकर पूछा, ''दिलीप आपका लडका है?''

प्राण का हृदय धक्-धक् कर उठा। ओह, यह बात थी। उसने अपने को संभाला और निश्चित स्वर मे कहा, ''जी हा। आज तो वह मेरा ही है।''

''आज तो?''

''जी हां, वह सदा मेरा नही था।''

''सच?''

''जी हा, काफिले के साथ लौटते हुए राज ने उसे पाया था।''

''क्या!'' मित्र हर्ष और अचरज से कांप उठे, ''कहा पाया था?''

''लाहौर के पास एक ट्रेन मे।''

''प्राण बाबू, प्राण बाबू! आप नहीं जानते, यह बच्चा मेरी बहन का है। मै उसे देखते ही पहचान गया था। ओह, प्राण बाबू! आप नहीं जानते, उनकी क्या हालत हुई।'' और उछलकर उसने पुकारा, ''भाई साब! रमेश मिल गया।''

और फिर प्राण को देखकर कहा, ''आप प्रमाण चाहते हैं? मेरे पास उसके फोटो हैं। यह देखिए।''

और उसने जेब से फोटो पर फोटो निकालकर सकपकाए हुए प्राण को चकित कर दिया। क्षण-भर मे वहा का दृश्य पलट गया, रमेश के माता-पिता पागल हो उठे। मा ने तडपकर कहा, ''कहा है? रमेश कहां है?''

राज ने कुछ नही देखा, वह शीघ्रता से अंदर गई और दिलीप को छाती से चिपकाकर फफक उठी। दूसरे ही क्षण वे सब उसके चारो ओर इकट्ठे हो गए। वे सब उद्विग्न थे, पर प्राण अब भी शांत था। उसने धीरे से कहा, ''राज, दिलीप की मां आ गई है।''

''उसकी मां!'' राज ने फफकते हुए कहा, ''तुम सब चले जाओ। तुम यहा क्यो आए? दिलीप मेरा है। मैं उसकी मां हूं।''

दिलीप (रमेश) की मां रोती हुई बोली, ''सचमुच! मा तुम्हीं हो। तुमने उसे पुनर्जन्म दिया है।''

सुनकर राज काप उठी। उसने दृष्टि उठाकर पहली बार उस मा को देखा और देखती रह गई। तब तक दिलीप जाग चुका था और उस चिल्ल-पो में घबराकर, किसी भी शर्त पर राज की गोद से उतरने को तैयार नही था। वह नवागंतुको को देखता और चीख पडता।

साल-भर पहले जब राज ने उसे पाया था, तब वह पूरे वर्ष का भी नहीं था। उस

समय जब लोग प्राणो के भय से भाग रहे थे। मनुष्य मनुष्य का रक्त उलीचने में होड ले रहा था। नारी का सम्मान ओर शिशु का शैशव सब पराभूत हो चुके थे। मनुष्य का मनुष्यत्व ही नष्ट हो चुका था। भागते मनुष्यों पर राह के मनुष्य टूट पडते और लाशो के ढेर लगा देते, रक्त बहता ओर उसके साथ ही बह जाती मानवता। ऐसी ही एक ट्रेन में राज भी थी। हमला होने पर जब वह संज्ञाहीन-सी अज्ञात दिशा की ओर भागी, तो एक बर्थ के नीचे से अपने सामान के भुलावे में वह जो कुछ उठाकर ले गई, वही बाद मे दिलीप बन गया। यह एक अद्‌भुत बात थी। अपनी अंतिम सपत्ति खोकर उसने एक शिशु को पाया, जो उस रक्त-वर्षा के बीच बेखबर सोया हुआ था। उसने केंप मे आकर जब उस बालक को देखा तो अनायास ही उसके मुह से निकला, "मेरे पति और मेरे दोनों बच्चों को मुझसे छीनकर आपने यह कैसा दान दिया है, मेरे प्रभु।"

लेकिन तब अधिक सोचने का अवसर नहीं था। वह भारत की ओर दौडी। मार्ग मे वे अवसर आए, जब उसे अपने और उस बच्चे के बीच किसी एक को चुनना था, पर हर बार वह प्राणो पर खेलकर उसे बचा लेने मे सफल हुई। मौत भी जिस बालक को उससे छीनने मे असफल रही, वही अब कुछ क्षणों मे उससे अलग हो जाएगा, क्योकि वह उसका नही था, क्योंकि वह उसकी मां नहीं थी. नहीं, नहीं, दिलीप उसका है!

और वह फफक-फफककर रोने लगी। प्राण ने और भी पास आकर धीरे से शात स्वर में कहा, "राज! मां बनने से भी एक बडा सौभाग्य होता है और वह है किसी के मातृत्व की रक्षा।"

"नहीं, नहीं।" वह उसी तरह बोली, "मैं वह सौभाग्य नहीं चाहती।"

"सौभाग्य तुम्हारे न चाहने से वापस नहीं लौट सकता राज, पर हां! तुम चाहो तो सौभाग्य को दुर्भाग्य में पलट सकती हो।"

राज सहसा प्राण की ओर देखकर बोली, "तुम कहते हो, मै इसे दे दूं?"

"मै कुछ नहीं कहता, वह उन्ही का है। तुम उनका खोया लाल उन्हें सौंप रही हो, इस कर्तव्य मे जो सुख है, उससे बडा सौभाग्य और क्या होगा? उस सौभाग्य को क्षणिक कायरता के वश होकर ठुकराओ नहीं, राज!" राज ने एक बार और प्राण की ओर देखा, फिर धीरे-धीरे अपने हाथ आगे बढाए और दिलीप को उसकी मा की गोदी मे दे दिया। उसके हाथ काप रहे थे, होंठ काप रहे थे। जैसे ही दिलीप को उसकी मा ने छाती से चिपकाया, राज ने रोते हुए चिल्लाकर कहा, "जाओ! तुम सब चले जाओ, अभी! इसी वक्त!"

प्राण ने कोई प्रतिवाद नहीं किया, बल्कि जीने तक उनको छोडने आया। उन लोगो ने बहुत कुछ कहना चाहा, पर उसने कुछ नहीं सुना। बोला, "मुझे विश्वास है, बच्चा आपका है। वह आपको मिल गया। आपका-सा सौभाग्य सबको प्राप्त हो, लेकिन मेरी एक प्रार्थना है।"

''जी कहिए, हमे आपकी हर बात स्वीकार है।''

प्राण ने बिना सुने कहा, ''कृपा कर अब आप लोग इधर न आए।''

वे चौंके ''क्या?''

''जी, आपकी बडी कृपा होगी।''

''पर सुनिए तो. ''

प्राण ने कुछ न सुना और अगले दिन मसूरी को प्रणाम करके आगे बढ गया। राज की अवस्था मुरदे जैसी थी। वह पीली पड गई थी। उसके नेत्र सूज गए थे। प्राण ने उस क्षण के बाद फिर एक शब्द भी ऐसा नहीं कहा, जो उसे दिलीप की याद दिला सके, लेकिन याद क्या दिलाने से आती है। वह तो अतर मे सोते की भांति उफनती है, राज के अतर मे भी उफनती रही। उसी उफान को शात करने के लिए प्राण मसूरी से लखनऊ आया। वहा से कलकत्ता और फिर मद्रास होता हुआ दिल्ली लौट आया। दिन बीत गए। महीने भी आए और चले गए। समय की सहायता पाकर राज दिलीप को भूलने लगी। प्राण ने फिर व्यापार मे ध्यान लगाया, पर साथ ही उसके मन मे एक आकांक्षा बनी रही। वह राज को फिर शिशु की अठखेलियो मे खोया देखना चाहता था। वह कई बार अनाथालय और शिशु-गृह गया, पर किसी बच्चे को घर न ला सका। जैसे ही वह आगे बढता, कोई अदर से बोल उठता, ''न जाने कौन कब आकर इसका भी मां-बाप होने का दावा कर बैठे।''

और वह लौट आया। इसके अलावा बच्चे की चर्चा चलने पर राज को दु:ख होता था। कभी-कभी तो दौरा भी पड जाता था। वह अब एकांतप्रिय, सुस्त और अतर्मुखी हो चली थी। प्राण जानता था कि यह प्रभाव अस्थायी है, अंतर का आवेग इस आवरण को बहुत शीघ्र उतार फेंकेगा। नारी की जडें जहां हैं, उसके विपरीत फल कहा प्रकट हो सकता है। वह एक दिन किसी बच्चे को घर ले आएगा और कौन जानता है, तब तक.

वह इसी उधेडबुन में था कि एक दिन उसने होटल से लौटते हुए देखा कि एक व्यक्ति उन्हें घूर-घूरकर देख रहा है। उसने कुछ विशेष ध्यान नही दिया। लोग देखा ही करते हैं। आज के युग का यह फैशन है। उसके पडोस में एक सज्जन रहते है। जब-तब अवसर पाकर छत की दीवार से झाककर राज को देखा करते है। राज ने कई बार उनकी इस हरकत की शिकायत भी की थी। लेकिन अगले दिन, फिर तीसरे दिन चौथे दिन यहां तक कि प्रतिदिन वही व्यक्ति उसी तरह उनका पीछा करने लगा। अब प्राण को यह बुरा लगा। उसने समझा, इसमे कोई रहस्य है, क्योंकि वह व्यक्ति राज के सामने कभी नही पडता था और न राज ने अब तक उसे देखा था। कम से कम वह इस बात को नही जानता था। यही सब कुछ सोचकर प्राण ने उस व्यक्ति से मिलना चाहा एक दिन वह ही होटल आया और उसने उस व्यक्ति को पूर्वत अपने स्थान पर देखा प्राण न सीधे जाकर उसके कधे पर हाथ रख दिया वह व्यक्ति

एकदम काप उठा, बोला, "क्या है?"

प्राण ने शात भाव से कहा, "यही तो मै आपसे पूछने आया हू।"

अचरज से वह व्यक्ति जिस तरह कापा, उसी तरह एकदम दृढ होकर बोला, "तो आप समझ गए? क्षमा करिए, मैं स्वय आपसे बात करने वाला था।"

"अब तक क्यों नहीं कर सके?"

उसने उसी तरह कहा, "क्योंकि मै पूर्ण विश्वस्त नहीं था और आप जानते है, आज के युग में ऐसी-वैसी बाते करना मौत को बुलाना है।"

प्राण उसकी वाणी से आश्वस्त तो हुआ, पर उसका हृदय धक्-धक् कर उठा। उसने कहा, "आप ठीक कहते है, पर अब आप निस्संकोच होकर जो चाहें, कह सकते हैं।"

वह बोला, "बात ऐसी ही है। आप बुरा न मानिए।"

"आप कहिए "

वह तनिक झिझका, फिर शीघ्रता से बोला, "आपके साथ जो नारी रहती है, वह आपकी कौन है?"

"आपका मतलब?"

"जी. "

प्राण सभला, बोला, "वह मेरी सब कुछ है और कुछ भी नहीं है।"

"जी, मै पूछता था, क्या वह आपकी पत्नी है?"

"मेरी पत्नी. ."

"जी।"

"नहीं।"

"नहीं?"

"जी हां।"

"आप सच कह रहे है?" उसकी वाणी में अचरज ही नहीं, हर्ष भी था।

"जी हां। मै सच कहता हू। अग्नि को साक्षी करके मैंने कभी उससे विवाह नहीं किया।"

"फिर?"

"लाहौर से जब भागा था, तब मार्ग में एक शिशु के साथ उसे मैंने संज्ञाहीन अवस्था मे एक खेत में पाया था।"

"तब आप उसे अपने साथ ले आए?"

"जी हा।"

"फिर क्या हुआ?"

"होता क्या? तब से वह मेरे साथ है।"

"लोग उसे आपकी पत्नी समझते हैं '

"यह तो स्वाभाविक हे। पुरुष के साथ इस तरह जो नारी रहती है, वह पत्नी ही होगी, इससे आगे आज का आदमी क्या सोच सकता हे? पर आप ये सब बाते क्यो पूछते हैं? क्या आप उसे जानते है?"

"जी," वह कांपा, बोला, "वह .वह मेरी पत्नी है।"

"आपकी पत्नी?" प्राण सिहर उठा।

"जी।"

"और आप उसे चोरो की भांति ताका करते हैं?"

अब उसका मुह पीला पड गया और नेत्र झुक गए। पर दूसरे ही क्षण न जाने क्या हुआ, उसने एक झटके के साथ गरदन ऊंची की, बोला, "उसका एक कारण है मै छिपाऊगा नहीं। उन मुसीबत के क्षणो मे मै उसकी रक्षा नहीं कर सका था।"

प्राण न जाने क्यों हँस पडा, "छोडकर भाग गए थे। अकसर ऐसा हुआ है "

"भागा तो नहीं था, पर प्राणो पर खेलकर उस तक आ नहीं सका।"

"वह जानती है?"

"नहीं कह सकता।"

"आपको भय है कि वह जानती होगी?"

"भय तो नहीं, पर ग्लानि अवश्य है।"

प्राण के भीतर के मन को जैसे कोई धीरे-धीरे छुरी से चीरने लगा हो, पर ऊपर से वह उसी तरह शात स्वर में बोला, "तो राज आपकी पत्नी है, सच?"

उस व्यक्ति ने रुंधे कंठ से कहा, "कैसे कहूं? मैंने उसको ढूंढने के लिए क्या नही किया? सभी कैंपो मे, रेडियो स्टेशन पर, पुलिस में—सभी जगह उसकी रिपोर्ट मौजूद है।"

प्राण बोला, "आप उसे ले जाने को तैयार हैं?"

वह झिझका नही, कहा, "जी, इसीलिए तो रुका हूं।"

"आपको किसी प्रकार का संकोच नहीं?"

"संकोच।" उसने कहा, "संकोच करके मैं अपने पापो को और नहीं बढाना चाहता . महात्माजी. ."

"तो फिर आइए।" प्राण ने शीघ्रता से उसकी बात काटते हुए कहा, "मेरे साथ चलिए।"

"अभी?"

"इसी वक्त। आप कहां रहते हैं?"

"जालंधर।"

"काम करते है?"

"जी हां, मुझे स्कूल में नौकरी मिल गई है?"

"आपके बच्चे तो दोनो मारे गए थे?"

"जी, एक बच गया था।"

"सच?"

"जी, वह मेरे पास है।"

"प्राण का मन अचानक हर्ष मे खिल उठा। शीघ्रता से बोला, "तो सुनिए, राज घर पर है। आप उसे अपने साथ ले जाइए। मै पत्र लिखे देता हूं।"

"आप नहीं चलेंगे?"

"जी नहीं। मै बाहर जा रहा हूं। लखनऊ मे एक आवश्यक कार्य है। तीन चार दिन मे लौटूंगा, आप उसे ले जाइएगा। कहना, उसका पुत्र जीवित है। मुझे देखकर वह दुखी होगी। समझे न।"

"समझ गया।"

"आप भाग्यवान हैं, मै आपको बधाई देता हूं और आपके साहस की प्रशसा करता हूं।"

वह व्यक्ति कृतज्ञ, अनुगृहीत कुछ जवाब दे कि प्राण ने एक पत्र उसके हाथ मे थमाया और बिजली की भांति गायब हो गया।

पत्र मे लिखा था—

"राज।

बहादुर लोग गलती कर सकते हैं, पर धोखा देना उनकी प्रकृति के विरुद्ध है। फिर भी दो शब्द मुझे तुम्हारे पास लाने को पर्याप्त है। प्रयत्न करना उनकी आवश्यकता न पडे। मुझे जानती हो मरने तक जीता रहूंगा।

—प्राण"

यह व्यक्ति ठगा-सा बहुत देर तक वहीं खडा रहा। कंगाल की फटी झोली मे कोई रत्न डाल गया हो ऐसी उसकी हालत थी। पर जन्म से तो वह कंगाल नही था, इसलिए साहस ने उसे धोखा नही दिया और वह प्राण के बताए मार्ग पर चल पडा।

पूरे पद्रह दिन बाद प्राण लौटा। जब तक उसने द्वार को नहीं देखा, उसके प्राण सकते मे आए रहे। जब देखा कि द्वार बंद है और उसका चिर-परिचित ताला लगा है तो उसके प्राण तेजी से कांपे। किवाड खोलकर वह ऊपर चढता ही चला गया। आगे कुछ नही देखा, देख ही नही सका। पालना पडा था, उससे ठोकर लगी और वह पलंग की पट्टी से जा टकराया। मुख से एक आह निकली। माथे मे दर्द का अनुभव हुआ। खून निकल आया था। उसने हाथ से चोट को सहलाया। आंखों ने तभी खून देखा, फिर पालना देखा, फिर घर देखा। सब कहीं मौन का राज्य था। प्रत्येक वस्तु पूर्वतः अपने स्थान पर सुरक्षित थी। प्राण के मन में उठा, पुकारे—'राज।'

पर वह कांपा- राज कहां है? राज तो चली गई। राज का पति आया था। राज का पुत्र जीवित है। सुख भी कैसा छल करता है। जा-जाकर लोट आता है। राज का

पति मिला पुत्र मिला दिलीप को मां बाप मिले और मुझे मुझे क्या मिला

उसने गर्दन को जोर से झटका दिया फुसफुसाया ओह मैं कायर हो चला मुझे तो वह मिला, जो किसी को नहीं मिला।

तभी सहसा पास की छत पर खटखट हुई। राज को घूरने वाले पडोसी ने उधर झांका। प्राण को देखा, तो गभीर होकर बोला, "आप आ गए?"

"जी हा।"

"कहा चले गए थे?"

"लखनऊ।"

"बहुत आवश्यक कार्य था क्या? आपके पीछे तो मुझे खेद है "

"जी, क्या?"

"आपकी पत्नी "

"मेरी पत्नी?"

"जी, मुझे डर है कि वह किसी के साथ चली गई।"

"चली गई? सच! आपने देखा था?"

"प्राण बाबू! मैं तो पहले ही जानता था। उसका व्यवहार ऐसा ही था। कोई पद्रह दिन हुए आपके पीछे एक व्यक्ति आया था। पहले तो देखते ही आपकी पत्नी ने उसे डांटा।"

"आपने सुना?"

"जी हा, मै यहीं था। शोर सुनकर देखा, वह क्रुद्ध होकर चिल्ला रही है—"जाओ, चले जाओ! तुम्हें किसने बुलाया था? तुम क्यो आए? मै उन्हें पुकारती हू?"

"सच, ऐसा कहा?"

"जी हा।"

"फिर?"

"फिर क्या, प्राण बाबू! वे बाबू साहब बडे ढीठ निकले, गए नही। एक पत्र आपकी पत्नी को दिया, फिर हाथ जोडे। फिर पैरो मे पड गए।"

"क्या यह सब आपने देखा था?"

"जी हा, बिलकुल देखा था।"

"फिर?"

"फिर वे पैरों में पड गए, पर आपकी पत्नी रोती रही। तभी अचानक उसने न जाने क्या कहा! वह कांपकर वहीं गिर पडी। फिर तो उसने, क्या कहू, लाज लगती है! जी में तो आया कि कूदकर उसका गला घोंट दू, पर मैं रुक गया। दूसरे का मामला है! आप आते ही होंगे, रात तक राह देखी, पर आप नही आए। सवेरे उठकर देखा, तो वे दोनो लापता थे।"

''उसी रात चले गए?''

''जी हा।''

प्राण ने सांस खींची, ''तो वे सच्चे थे, बिलकुल सच्चे।''

पड़ोसी ने कहा, ''क्या?''

''जी हां, उन्होने वही किया, जो उन्हें करना चाहिए था।'' और फिर अचरज से बुत बने पडोसी की ओर देखकर बोला, ''वे भाई राज के पति थे।''

''राज के पति?'' चकित पडोसी और भी अचकचाया।

''जी हां, पंजाब से भागते हुए हम लोगो के साथ जो कुछ हुआ, वह तो आप जानते ही हैं। राज को भी मैने लाशो की ढेर मे से उठाया था। वह तब जानती थी कि उसके पति मर गए हैं, इसीलिए वह मेरे साथ रहने लगी।''

पडोसी अभी तक अचकचा रहा था, बोला, ''आपके साथ रहने पर भी उन्हे राज को ले जाने मे संकोच नही हुआ?''

प्राण ने कहा, ''सो तो आपने देखा ही था।''

वह क्या कहे, फिर भी ठगा-सा बोला, ''आपका अपना परिवार कहा है?''

''भागते हुए मेरी पत्नी और मां-बाप दरिया मे बह गए थे। बच्चे एक-एक करके रास्ते मे सो गए।''

''भाई साहब!'' पडोसी जैसे चीख पडेगा, पर वह बोल भी न सका। मुंह उसका खुला-का-खुला रह गया और दृष्टि स्थिर हो गई।

मेरा वतन

उसने सदा की भांति तहमत लगा लिया था और फैज ओढ ली थी। उसका मन कभी-कभी साइकिल के ब्रेक की तरह तजी से झटका देता था, परंतु पैर यंत्रवत् आगे बढते चले जाते थे। यद्यपि इस शक्ति-प्रयोग के कारण वह बेतरह कांप उठता था, पर उसकी गति पर अकुश नही लगता था। देखने वालों के लिए वह एक अर्ध-विक्षिप्त से अधिक समझदार नही था। वे अकसर उसका मजाक उडाना चाहते थे। वे कहकहे लगाते और ऊचे स्वर मे गालिया पुकारते, पर जैसे ही उसकी दृष्टि उठती—न जाने उन निरीह, भावहीन, फटी-फटी आखो मे क्या होता था—वे सहम जाते, सोडावाटर के तूफान की तरह उठने वाले कहकहे मर जाते और वह नजर दिल की अदरूनी बस्ती को शोले की तरह सुलगाती हुई, फिर नीचे झुक जाती। वे फुसफुसाते, "जरूर इसका सब-कुछ लुट गया है " "इसके रिश्तेदार मारे गए हैं. ." "नहीं, नही, ऐसा लगता है कि काफिरों ने इसके बच्चो को इसी के सामने आग मे भून दिया है या भालों की नोक पर टिकाकर तब तक घुमाया है जब तक उनकी चीख-पुकार बिल्ली की मिमियाहट से चिडिया के बच्चे की ची-चीं मे पलटती हुई खत्म नहीं हो गई है "

"और यह सब देखता रहा है।"

"हां, यह देखता रहा है। वही खौफ इसकी आखों में उतर आया है। उसी खौफ ने इसके रोम-रोम को जकड लिया है। वह खौफ इसके लहू में इतना घुल-मिल गया है कि इसे देखकर डर लगता है।"

"डर," किसी ने कहा था, "इसकी आंखों में मौत की तसवीर है, वह मौत जो कत्ल, खूरेंजी और फांसी का निजाम सभालती है।"

एक बार एक राह चलते दर्दमंद ने एक दुकानदार से पूछा, "यह कौन है?" दुकानदार ने जवाब दिया, "मुसीबतजदा है, जनाब। अमृतसर में रहता था। काफिरो ने सब कुछ लूटकर इसके बीवी-बच्चों को आग में भून दिया।"

"जिंदा?" राहगीर के मुह से अचानक निकल गया।

दुकानदार हॅसा, "जनाब किस दुनिया मे रहते हैं? वे दिन बीत गए जब आग काफिरो के मुरदो को जलाती थी। अब तो वह जिदों को जलाती है।"

राहगीर ने तब कडवी भाषा में काफिरो को वह सुनाई कि दुकानदार ने खुश होकर उसे बैठ जाने के लिए कहा। उसे जाने की जल्दी थी। फिर भी जरा-सा बैठकर उसने कहा, "कोई बडा आदमी जान पडता है।"

"उसी रात चले गए?"

"जी हा।"

प्राण ने सांस खींची, "तो वे सच्चे थे, बिलकुल सच्चे।"

पडोसी ने कहा, "क्या?"

"जी हा, उन्होने वही किया, जो उन्हें करना चाहिए था।" और फिर अचरज से बुत बने पडोसी की ओर देखकर बोला, "वे भाई राज के पति थे।"

"राज के पति?" चकित पडोसी और भी अचकचाया।

"जी हां, पजाब से भागते हुए हम लोगों के साथ जो कुछ हुआ, वह तो आप जानते ही हैं। राज को भी मैंने लाशो की ढेर मे से उठाया था। वह तब जानती थी कि उसके पति मर गए हैं, इसीलिए वह मेरे साथ रहने लगी।"

पडोसी अभी तक अचकचा रहा था, बोला, "आपके साथ रहने पर भी उन्हे राज को ले जाने मे सकोच नही हुआ?"

प्राण ने कहा, "सो तो आपने देखा ही था।"

वह क्या कहे, फिर भी ठगा-सा बोला, "आपका अपना परिवार कहां है?"

"भागते हुए मेरी पत्नी और मां-बाप दरिया मे बह गए थे। बच्चे एक-एक करके रास्ते में सो गए।"

"भाई साहब।" पडोसी जैसे चीख पडेगा, पर वह बोल भी न सका। मुंह उसका खुला-का-खुला रह गया और दृष्टि स्थिर हो गई।

मेरा वतन

उसने सदा की भांति तहमत लगा लिया था और फैज ओढ ली थी। उसका मन कभी-कभी साइकिल के ब्रेक की तरह तजी से झटका देता था, परतु पैर यन्त्रवत् आगे बढते चले जाते थे। यद्यपि इस शक्ति-प्रयोग के कारण वह बेतरह काप उठता था, पर उसकी गति पर अकुश नही लगता था। देखने वालो के लिए वह एक अर्ध-विक्षिप्त से अधिक समझदार नही था। वे अकसर उसका मजाक उडाना चाहते थे। वे कहकहे लगाते और ऊचे स्वर मे गालिया पुकारते, पर जैसे ही उसकी दृष्टि उठती— न जाने उन निरीह, भावहीन, फटी-फटी आखो मे क्या होता था—वे सहम जाते, सोडावाटर के तूफान की तरह उठने वाले कहकहे मर जाते और वह नजर दिल की अंदरूनी बस्ती को शोले की तरह सुलगाती हुई, फिर नीचे झुक जाती। वे फुसफुसाते, "जरूर इसका सब-कुछ लुट गया है ." "इसके रिश्तेदार मारे गए हैं ." "नही, नही, ऐसा लगता है कि काफिरो ने इसके बच्चों को इमी के सामने आग मे भून दिया है या भालों की नोक पर टिकाकर तब तक घुमाया है जब तक उनकी चीख-पुकार बिल्ली की मिमियाहट से चिडिया के बच्चे की चीं-ची मे पलटती हुई खत्म नहीं हो गई है "

"और यह सब देखता रहा है!"

"हां, यह देखता रहा है। वही खौफ इसकी आंखों मे उतर आया है। उसी खौफ ने इसके रोम-रोम को जकड लिया है। वह खौफ इसके लहू में इतना घुल-मिल गया है कि इसे देखकर डर लगता है।"

"डर," किसी ने कहा था, "इसकी आखो मे मौत की तसवीर है, वह मौत जो कत्ल, खूंरेजी और फांसी का निजाम सभालती है।"

एक बार एक राह चलते दर्दमद ने एक दुकानदार से पूछा, "यह कौन है?" दुकानदार ने जवाब दिया, "मुसीबतजदा है, जनाब। अमृतसर में रहता था। काफिरो ने सब कुछ लूटकर इसके बीवी-बच्चों को आग में भून दिया।"

"जिंदा?" राहगीर के मुह से अचानक निकल गया।

दुकानदार हँसा, "जनाब किस दुनिया मे रहते हैं? वे दिन बीत गए जब आग काफिरों के मुरदो को जलाती थी। अब तो वह जिंदो को जलाती है।"

राहगीर ने तब कडवी भाषा में काफिरो को वह सुनाई कि दुकानदार ने खुश होकर उसे बैठ जाने के लिए कहा। उसे जाने की जल्दी थी। फिर भी जरा-सा बैठकर उसने कहा, "कोई बड़ा आदमी जान पडता है।"

''जी हा वकील था, हाइकोर्ट का बडा वकील। लाखो रुपयो की जायदाद छोड आया हे।''

''अच्छा जी!''

''जनाब क्या पूछने है? आदमी आसानी से पागल नही होता। दिल पर चोट लगती है तभी वह टूटता है। पर जब एक बार टूट जाता है तो फिर नही जुडता। आजकल चारो तरफ यही कहानी है। मेरा घर का मकान नही था, लेकिन दुकान मे सामान इतना था कि तीन मकान बन सकते थे।''

''जी हा,'' राहगीर ने सदय होकर कहा, ''आप ठीक कहते हैं। पर आपके बाल-बच्चे तो ठीक आ गए है?''

''जी हा, खुदा का फजल है। मैंने उन्हे पहले ही भेज दिया था। जो पीछे रह गए थे, उनकी न पूछिए। रोना आता है। खुदा गारत करे हिंदुस्तान को. ''

राहगीर उठा। उसने बात काटकर इतना ही कहा, ''देख लेना, एक दिन वह गारत होकर रहेगा। खुदा के घर मे देर है, पर अंधेर नहीं।''

और वह चला गया, परंतु उस अर्ध-विक्षिप्त व्यक्ति के क्रम में कोई अंतर नही पडा। वह उसी तरह धीरे-धीरे बाजारो में से गुजरता, शरणार्थियों की भीड में धक्के खाता, परंतु उस ओर देखता नही। उसकी दृष्टि तो आसपास की दुकानों और मकानो पर जा अटकती थी। अटकती ही नहीं, चिपक जाती थी। मिकनातीस लोहे को खींच लेती हैं, वैसे ही वे बेजबा इमारते, जो जगह-जगह पर खडहर की शक्ल में पलट चुकी थीं, उसकी नजर और नजर के साथ उसके मन, बुद्धि, चित्त और अहकार सभी को अपनी ओर खीच लेती थीं और फिर उसे जो कुछ याद आता, वह उसे, पैर के तलुए से होकर सिर मे निकल जाने वाली सूली की तरह काटता हुआ, उसके दिल के कोने मे जा बैठता था। इसी कारण वह आज तक मर नहीं सका था, केवल सिसकिया भरता रहता था...वे सिसकिया जिनमें न शब्द थे, न आसू। वे सूखी हिचकियों की तरह उसे बेजान किए हुए थीं।

सहसा उसने देखा— सामने उसका अपना मकान आ गया है। उसके अपने दादा ने उसे बनाया था। उसके ऊपर के कमरे मे उसके पिता का जन्म हुआ था। उसी कमरे मे उसने आखे खोली थीं और उसी कमरे में उसके बच्चो ने पहली बार प्रकाश-किरण का स्पर्श पाया था। उस मकान के कण-कण मे उसके जीवन का इतिहास अकित था। उसे फिर बहुत-सी कहानिया याद आने लगी। वह तब उन कहानियों में इतना डूब गया था कि उसे परिस्थिति का तनिक भी ध्यान नहीं रहा। वह जीने पर चढने के लिए आगे बढा और जैसा कि वह सदा करता था, उसने घंटी पर हाथ डाला। बेजान घटी शोर मचाने लगी और तभी उसकी नींद टूट गई। उसने अपने चारों देखा। वहा सब एक ही तरह के आदमी नहीं थे। वे सब एक ही जबान नहीं बोलते थे। फिर भी उनमें ऐसा कुछ था जो उन्हे एक कर रहा था और वह इस एके मे अपने लिए कोई जगह नही पाता

था उसने तेजी से आगे बढ़ जाना चाहा, पर तभी ऊपर से एक व्यक्ति उतर आया। उसने ढीला पाजामा और कुर्ता पहना था, पूछा, "कहिए जनाब?"

वह अकचकाया, "जी।"

"जनाब किसे पूछते थे?"

"जी, मैं पूछता था कि मकान खाली है?"

ढीले पाजामे वाले व्यक्ति ने उसे ऐसे देखा कि जैसे वह कोई चोर या उठाईगिरा हो। फिर मुह बनाकर तलखी से जवाब दिया, "जनाब! तशरीफ ले जाइए वरना "

आगे उसने क्या कहा, वह यह सुनने के लिए नहीं रुका, बढ़ा चला गया। उसकी गति मे तूफान भर उठा, उसके मस्तिष्क मे बवडर उठ खडा हुआ और उसका चितन गलि की चट्टान पर टकराकर पाश-पाश हो गया। उसे जब होश आया तो वह अनारकली से लेकर माल तक का समूचा बाजार लाघ चुका था। वह बहुत दूर निकल आया था।

यहा आकर वह कापा। एक टीस ने उसे कुरेद डाला, जैसे बढ़ई ने पेच मे पेचकस डालकर पूरी शक्ति के साथ उसे घुमाना शुरू कर दिया हो। हाईकोर्ट की शानदार इमारत उसके सामने थी। वह दृष्टि गडाकर उसके कंगूरों को देखने लगा। उसने बरामदे की कल्पना की। उसे याद आया—"वह कहां बैठता था, वह कौन से कपडे पहनता था कि उसका हाथ सिर पर गया, जैसे उसने सांप को छुआ। उसने उसी क्षण हाथ खींच लिया, पर मोहक स्वप्नों ने उसकी रगीन दुनिया की रगीनी को उसी तरह बनाए रखा। वह तब इस दुनिया में इतना डूब चुका था कि बाहर की जो वास्तविक दुनिया है, वह उसके लिए मृगतृष्णा बन गई थी। उसने अपने पैरो के नीचे की धरती को ध्यान से देखा, देखता रहा। सिनेमा की तसवीरों की तरह अतीत की एक दुनिया, एक शानदार दुनिया उसके अंतस्तल पर उभर आई। वह इसी धरती पर चला करता था। उसके आगे-पीछे उसे नमस्कार करते, सलाम झुकाते, बहुत-से आदमी आते और जाते थे। दूसरे वकील हाथ मिलाकर शिष्टाचार प्रदर्शित करते और.

विचारो के हनुमान ने समुद्र पार करने के लिए छलांग लगाई उसका ध्यान जज के कमरे में जा पहुंचा। जब वह अपने केस मे बहस शुरू करता था तो कमरे मे सन्नाटा छा जाता था। केवल उसकी वाणी की प्रतिध्वनि गूजा करती थी, केवल 'मी लार्ड' शब्द बार-बार उठता और 'मी लार्ड' कलम रखकर उसकी बात सुनते

हनुमान फिर कूदे और वह अब बार एसोसिएशन के कमरे मे आ गया था। इसमे न जाने कितने कहकहे उसने लगाए थे। कितनी बार राजनीति पर उत्तेजित कर देने वाली बहसें की थी। वहीं बैठकर उसने महापुरुषों को अनेक बार श्रद्धाजलियां भेंट की थी। विदा और स्वागत के खेल खेले थे।

वह अब उस कुरसी के बारे में सोचने लगा, जिस पर वह बैठा करता था। तब उसे कमरे की दीवारो के साथ-साथ दरवाजे के पायदान की याद भी आ गई और वह

पायदान को देखने के लिए आतुर हो उठा। वह सब कुछ भूलकर सदा की तरह झूमता हुआ आगे बढा, पर तभी जैसे किसी ने उसे कचोट लिया। उसने देखा कि लान की हरी घास मिट्टी मे समा गई है। रास्ते बद है, केवल डरावनी आंखों वाले सैनिक मशीनगन सभाले, हेल्मेट पहने तैयार खडे है कि कोई आगे बढ़े और वे शूट कर दे। उसने हरी वर्दी वाले होमगार्डों को भी देखा और देखा कि राइफल थामे पठान लोग जब मन में उठता है, फायर कर देते है। वे मानो छड़ी के स्थान पर राइफल का प्रयोग करते हैं और उनके लिए जीवन की पवित्रता बंदूक की गोली की सफलता पर निर्भर करती है। उसे स्वय जीवन की पवित्रता से अधिक मोह नही था। वह खडहरो के लिए आसू भी नहीं बहाता था। उसने अग्नि की प्रज्वलित लपटों को अपनी आखो से उठते देखा था। उसे तब खाडव वन की याद आ गई थी, जिसकी नीव पर इंद्रप्रस्थ सरीखे वैभवशाली और कलामय नगर का निर्माण हुआ था। तो क्या इस महानाश की नींव पर भी किसी गौरव-गरिमामय कलाकृति का निर्माण होगा? इंद्रप्रस्थ की उस कला के कारण महाभारत संभव हुआ, जिसने इस अभागे देश के मदोन्मत्त किंतु जर्जरित शौर्य को सदा के लिए समाप्त कर दिया। क्या आज फिर वही कहानी दोहराई जाने वाली है?

एक दिन उसने अपने बडे बेटे से कहा था, ''जिंदगी न जाने क्या-क्या खेल खेती है। वह तो बहुरूपिया है, पर दूसरी दुनिया बनाते हमें देर नहीं लगती। परमात्मा ने मिट्टी इसलिए बनाई है कि हम उसमें से सोना पैदा करें।''

बेटा बाप का सच्चा उत्तराधिकारी था। उसने परिवार को एक छोटे-से कस्बे मे छोडा और आप आगे बढ़ गया। वह अपनी उजडी हुई दुनिया को फिर से बसा लेना चाहता था, पर तभी अचानक छोटे भाई का तार मिला। लिखा था, ''पिताजी न जाने कहा चले गए।''

तार पढकर बडा भाई अचरज से कांप उठा। वह घर लौटा और पिता की खोज करने लगा। उसने मित्रो को लिखा, रेडियो पर समाचार भेजे, अखबारों में विज्ञापन निकलवाए। सब-कुछ किया, पर वह यह नहीं समझ सका कि आखिर वे कहा गए और क्यो गए? वह इसी उधेड-बुन में था कि एक दिन सवेरे-सवेरे देखा—वे चले आ रहे हैं—शांत निर्द्वद्व और निर्मुक्त।

''आप कहां चले गए थे?'' प्रथम भावोद्रेक समाप्त होने पर पुत्र ने पूछा।

शात मन से पिता ने उत्तर दिया, ''लाहौर।''

''लाहौर?'' पुत्र हठात् कांप उठा, ''आप लाहौर गए थे?''

''हां।''

''कैसे?''

पिता बोले, ''रेल में बैठकर गया था, रेल में बैठकर आया हूं।''

''पर आप वहां क्यों गए थे?''

"क्यो गया था?" जैसे उसकी नीद टूटी। उसने अपने-आपको संभालते हुए कहा, "वैसे ही, देखने के लिए चला गया था।"

और आगे की बहस से बचने के लिए वह उटकर चले गए। उसके बाद उन्होंने इस बारे में किसी भी प्रश्न का जवाब देने से इनकार कर दिया। उनके पुत्र ने इस परिवर्तन को देखा, पर न तो वे उन्हें समझा सकते थे, न उन पर क्रोध कर सकते थे, क्योकि वे दुनिया के दूसरे काम सदा की भांति करते रहते थे। हां, पजाब की बात चलती तो आह भरकर कह देते थे, "गया पंजाब। पंजाब अब कहां है?" पुत्र फिर काम पर लौट गए और वे भी घर की व्यवस्था करने लगे। इसी बीच मे वे एक दिन फिर लाहौर चले गए, परंतु इससे पहले कि उनके पुत्र इस बात को जान सके, वे लौट भी आए। पत्नी ने पूछा, "आखिर क्या बात है?"

"कुछ नहीं।"

"कुछ नहीं कैसे? आखिर आप वहां क्यो जाते हैं?"

तब कई क्षण चुप रहने के बाद उन्होने धीरे से कहा, "क्यो जाता हू, क्योंकि वह मेरा वतन है। मैं वहा पैदा हुआ हूं। वहां की मिट्टी में मेरी जिदगी का राज छिपा है। वहां की हवा में मेरे जीवन की कहानी लिखी हुई है।"

पत्नी की आंखे भर आई, बोली, "पर अब क्या, अब तो सब कुछ गया।"

"हां, सब कुछ गया।" उन्होंने कहा, "मै जानता हूं, अब कुछ नही हो सकता, पर न जाने क्या होता है। उसकी याद आते ही मैं अपने-आपको भूल जाता हूं और मेरा वतन मिकनातीस की तरह मुझे अपनी ओर खीच लेता है।" उनकी आखें भर आई।

करुण स्वर मे पत्नी ने कहा, "नहीं, नहीं, आपको अपने को सभालना चाहिए। जो कुछ चला गया उसका दुःख तो जिंदगी भर सालता रहेगा। भाग्य में वही लिखा था, पर अब जान-बूझकर आग मे कूदने से क्या लाभ?"

"हां, अब तो जो कुछ बचा है उसी को सहेजकर गाड़ी खींचनी ठीक है।" उसने पत्नी से कहा और फिर जी-जान से नए कार्य-क्षेत्र में जुट गया। उसने फिर वकालत का चोंगा पहन लिया। उसका नाम फिर बार एसोसिएशन में गूंजने लगा। उसने अपनी जिदगी को भूलने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया। और शीघ्र ही वह अपने काम में इतना डूब गया कि देखने वाले दांतों के तले उंगली दबाकर कहने लगे, "इन लोगों मे कितना जीवट है। सहस्रों वर्षों में अनेक पीढियों ने अपने को खपाकर जिस दुनिया का निर्माण किया था, वह क्षण-भर में राख का ढेर हो गई, तो बिना आंसू बहाए उसी तरह की दुनिया, ये लोग क्षणों मे ही बना देना चाहते हैं।"

उनका अचरज ठीक था। तबुओं और कैंपों के आसपास, सडको के किनारे राह से दूर, भूत-प्रेतों के चिर-परिचित अड्डों में, उजडे गांवों में, खोले और खादर मे, जहां भी मनुष्य की शक्ति कुठित हो चुकी थी, वही ये लोग पहुंच जाते थे। और पादरी

के नास्तिक मित्र की तरह नरक को स्वर्ग में बदल देते थे। उन लोगों ने जैसे कसम खाई थी कि धरती अनंत है, शक्ति असीम है, फिर निराशा कहा रह सकती है?

ठीक उसी समय जब उसका बडा पुत्र अपनी नई दुकान का मुहूर्त करने वाला था उसे एक बार फिर छोटे भाई का तार मिला, "पिताजी पांच दिन से लापता है।" पढकर वह क्रुद्ध हो उठा और तार के टुकडे-टुकडे करके उसने दूर फेंक दिए। और चिनचिनाया, "वे नही मानते तो उन्हें अपने किए का फल भोगना चाहिए। वे अवश्य लाहौर गए हैं।"

उसका अनुमान सच था। जिस समय वे इस प्रकार चिंतित हो रहे थे, उसी समय लाहौर के एक दुकानदार ने एक अर्ध-विक्षिप्त व्यक्ति को—जो तहमत लगाए, फैज कैप ओढे, फटी-फटी आंखों से चारों ओर देखता हुआ घूम रहा था—पुकारा, "शेख साहब! सुनिए तो। बहुत दिन मे दिखाई दिए, कहा चले गए थे?"

उस अर्ध-विक्षिप्त पुरुष ने थकी हुई आवाज में जवाब दिया, "मै अमृतसर चला गया था।"

"क्या?" दुकानदार ने आंखे फाडकर कहा, "अमृतसर?"

"हा, अमृतसर गया था। अमृतसर मेरा वतन है।"

दुकानदार की आंखे क्रोध से चमक उठी, बोला, "मैं जानता हूं। अमृतसर मे साढे तीन लाख मुसलमान रहते थे पर आज एक भी नही है।"

"हां," उसने कहा, "वहा आज एक भी मुसलमान नहीं है।"

"काफिरों ने सबको भगा दिया, पर हमने भी कसर नही छोडी। आज लाहौर में एक भी हिंदू या सिख नहीं है और कभी होगा भी नहीं।"

वह हँसा, उसकी आंखे चमकने लगीं। उनमें एक ऐसा रंग भर उठा जो बेरंग था। और वह हँसता चला गया, हँसता चला गया, "वतन, धरती, मोहब्बत सब कितनी छोटी-छोटी बातें हैं! सबसे बड़ा मजहब है, दीन है, खुदा का दीन। जिस धरती पर खुदा का बंदा रहता है, जिस धरती पर खुदा का नाम लिया जाता है, वही मेरा वतन है, वही मेरी धरती है और वही मेरी मोहब्बत है।"

दुकानदार ने धीरे से अपने दूसरे साथी से कहा, "आदमी जब होश खो बैठता है, तो कितनी सच्ची बात कहता है।"

साथी ने जवाब दिया, "जनाब! तब उसकी जबान से खुदा बोलता है।"

"बेशक!" उसने कहा और मुड़कर उस अर्ध-विक्षिप्त से बोला, "शेख साहब! आपको घर मिला?"

"सब मेरे ही घर है।"

दुकानदार मुसकराया, "लेकिन, शेख साहब! जरा बैठिए तो, अमृतसर मे किसी ने आपको पहचाना नहीं?"

वह ठहाका मारकर हंसा, "तीन महीने जेल में रहकर लौटा हूं।"

सच?

हा हा उसने आखें कहा

तुम जीवट के आदमी हो

और तब दुकानदार ने खुश होकर उसे रोटी और कबाब मगाकर दिया। लापरवाही से उन्हे पल्ले मे बाधकर और एक टुकड़े को चबाता हुआ वह आगे बढ गया।

दुकानदार ने कहा, "अजीब आदमी है। किसी दिन लखपति था, आज फाकामस्त है।"

"खुदा अपने बंदो का खूब इम्तहान लेता है।"

"जन्नत ऐसो को ही मिलती है।"

"जी हा, हिम्मत भी खूब है। जान-बूझकर आग मे जा कूदा।"

"वतन की याद ऐसी ही होती है।" उसके साथी ने, जो दिल्ली का रहने वाला था, कहा, "अब भी जब मुझे दिल्ली की याद आती है, तब दिल भर आता है।"

और वह आगे बढ रहा था। माल पर भीड बढ रही थी। कारे भी कम नही थी और अग्रेज, एग्लो-इडियन तथा ईसाई नारिया पूर्ववत् बाजार कर रही थीं। फिर भी उसे लगा कि वह माल, जो उसने देखी थी, यह नही है। शरीर कुछ वैसा ही था, पर उसकी आत्मा झुलस चुकी है। लेकिन यह भी उसकी दृष्टि का दोष था। कम-से-कम वे जो वहा घूम रहे थे, उनका ध्यान आत्मा की ओर नही था।

एकाएक वह पीछे मुडा। उसे रास्ता पूछने की जरूरत नहीं थी। बैल की तरह उसके पैर डगर को पहचानते थे। आंखे इधर-उधर देख रही थी। पैर अपने रास्ते पर बिना डगमगाए बढ रहे थे। और विश्वविद्यालय की आलीशान इमारत एक बार फिर सामने आ रही थी। उसने नुमायश की ओर एक दृष्टि डाली, फिर बुलनर के बुत की तरफ से होकर वह अंदर चला गया। उसे किसी ने नहीं रोका और वह लॉ कालेज के सामने निकल आया। उस समय उसका दिल एक गहरी हूक से टीसने लगा था। कभी वह इस कालेज में पढा करता था . वह कांपा, उसे याद आया, उसने इस कालेज मे पढाया भी है .वह फिर कापा। हूक फिर उठी। उसकी आखे भर आई। उसने मुह फिरा लिया। उसके सामने वह रास्ता था जो उसे दयानंद कालेज ले जा सकता था। एक दिन पजाब विश्वविद्यालय, दयानंद विश्वविद्यालय कहलाता था.

तब एक भीड उसके पास से निकल गई। वे प्रायः सभी शरणार्थी थे .बेघर और बेजर, लेकिन उन्हें देखकर उसका दिल पिघला नहीं, कडवा हो उठा। उसने चिल्लाकर उन्हे गालियां देनी चाहीं। तभी पास से जाने वाले दो व्यक्ति उसे देखकर ठिठक गए। एक ने रुककर उसे ध्यान से देखा, दृष्टि मिली, वह सिहर उठा। सर्दी गहरी हो रही थी और कपडे कम थे। वह तेजी से आगे बढा। वह जल्दी से जल्दी कालेज कैंप मे पहुच जाना चाहता था।

उन दो व्यक्तियों में मे एक ने, जिसने उसे पहचाना था, दूसरे से कहा, ''मैं इसको जानता हूं।''

''कौन है?''

''हिंदू।''

साथी अचकचाया, ''हिंदू?''

''हा, हिदू। लाहौर का एक मशहूर वकील '' और कहते-कहते उसने ओवरकोट की जेब में से पिस्तौल निकाल ली। वह आगे बढा, उसने कहा, ''जरूर यह मुखबिरी करने आया है।''

उसके बाद एक गोली चली। एक हलचल, एक खटपट-सी मची। देखा—एक व्यक्ति चलता-चलता लडखड़ाया और गिर पडा। पुलिस ने उसे देखकर भी अनदेखा कर दिया, परंतु जो अनेक व्यक्ति उस पर झुक आए थे, उनमें से एक ने उसे पहचाना और कापकर पुकारा, ''मिस्टर पुरी! तुम! तुम यहां? ऐसे. ?''

मिस्टर पुरी ने आंखे खोलीं, उनका मुख श्वेत हो गया था और उस पर मौत की छाया पड रही थी। उन्होंने पुकारने वाले को देखा और धीरे से कहा, ''हसन. . हसन ।''

आंखें फिर मिच गई। हसन ने चिल्लाकर सैनिक से कहा, ''जल्दी करो। टैक्सी लाओ। मेयो अस्पताल चलना है। अभी...''

भीड बढती आ रही थी। फौज, पुलिस और होमगार्ड सबने उसे घेर लिया। हसन जो उसका साथी था, जिसके साथ वह पढ़ा था, जिसके साथ उसने साथी और प्रतिद्वंद्वी बनकर अनेक मुकदमे लडे थे, वह अब उसे अचरज से देख रहा था। उसने एक बार झुककर कहा, ''तुम यहां इस तरह क्यो आए, मिस्टर पुरी?''

मिस्टर पुरी ने एक बार फिर आखे खोलीं। वे धीमे स्वर मे फुसफुसाए, ''मै यहां क्यों आया? मैं यहां से जा ही कहा सकता हूं? यह मेरा वतन है, हसन। मेरा वतन. .।''

स्यापा मुका

मैने समाचार पढ लिया है और स्तब्ध रह गया हू। कई क्षण लगते है उस जडता की स्थिति से उबरने मे। फिर पढ़ता हूं उस समाचार को अविश्वास से, पर अदर तो अब तक सब कुछ टूट-बिखर गया है। किरच-किरच हो गया है मेरा संयम और किरच जैसे चुभती हैं

तभी सुमति उधर से गुजरती है। स्वभाव के अनुसार मुसकराकर मेरी ओर देखती है और काप उठती है, "क्या हुआ? क्या बात है?"

चुपचाप अखबार उसकी ओर बढा देता हूं। पढ़ते न पढते एक दर्दनाक 'हाय' निकल जाती है उसके मुख से और चीर जाती है हम दोनो के अंतर को। बदहवास सुमति का क्षण-भर पहले का मुसकराता चेहरा राख हो जाता है और वह इतना ही कह पाती है, "हाय रब्बा, यह क्या हुआ?"

दैनिक 'जनसत्ता' के प्रथम पृष्ठ पर पंजाब के आतंकवादियो की गतिविधियो का विवरण दिया हुआ था। उसी के बीच मे बॉक्स में एक विशेष सूचना थी, "परसो आतकवादियों ने स्कूटर पर आते दो भाइयो में से एक की निर्मम हत्या कर दी। छोटा भाई जो स्कूटर चला रहा था, केशधारी सिख था। पीछे बैठा बडा भाई मोना हिंदू था। छोटे भाई मनजीतसिंह के बार-बार अनुनय-विनय करने पर भी जालिमों ने बड़े भाई डा. सर्वजीतसिंह को गोली मार दी और अपनी मोटर साइकिल पर भाग गए। डा सिह स्थानीय कालेज मे पंजाबी भाषा के प्राध्यापक और प्रख्यात कथाशिल्पी थे। मनजीतसिह दिल्ली मे वकालत करते हैं।

गोली लगने पर सर्वजीत नीचे गिर पडे पर तुरंत मृत्यु नही हुई। बदहवास मनजीत यह कहते हुए 'भइया! मेरे आने तक जिंदा रहना' डाक्टर को लेने दौडा। तभी हत्यारे फिर लौटे और सर्वजीत को जिदा पाकर उन्हे फिर गोली मार दी। भाई के लौटने के पहले ही सर्वजीत ने दम तोड़ दिया.. "

फिर तार देने और दिल्ली जाने के लिए प्रबंध करने मे पूरा दिन बीत गया। सकते की हालत में यंत्रवत सब कुछ चलता रहा। गाड़ी मे भी एक भयानक जड़ता ने आवृत्त किए रखा सब कुछ को। बीच-बीच में पुरानी यादे दस्तक दे जातीं मन के द्वार पर, तब नाना रूप चित्र उभर-उभरकर छाती को बहुत गहरे, अदर तक चीर-चीर जाते .

पूरे पच्चीस साल पड़ोसी रहा हू उन लोगों का। एक ही मकान मे ऊपर-नीचे

रहते प्रेम, विग्रह और संधि के न जाने कितने खेल खेले हमने। किसके पास है लेखा-जोखा उन सबका, पर एक बात हम सब निश्चित रूप से जानते थे कि हर खेल हमारे संबधों को और गहरा कर गया है .

गृहस्वामी सरदार देवेंद्रसिंह को मैंने नहीं देखा। सुना है उनके बारे में। बेहद ईमानदार, भले और परदु:खकातर व्यक्ति थे। दुनिया से जल्दी चले गए। भले मानुष जल्दी ही चले जाते हैं। सरदारनी अम्मा—हम उन्हे इसी नाम से पुकारते थे—सदा, जब कभी पुरानी यादों में खोई होती तो अंत में आंखों में आंसू भरकर बोल उठती, "इक देवता धरती पर उतरा सी। छेती नाल टुर गया। देवता छेती ही टुर जाते हैं। उणादा असली घर तो ओही होंदा है।"

और वह देवता जब चला गया तो सरदारनी अम्मा रह गई थीं अपने पांच बच्चो के साथ—चार बेटे, एक बेटी। सबसे बडा सर्वजीत तेरह वर्ष का था और सबसे छोटा मनजीत तीन वर्ष का। पूंजी के नाम पर बस, ईमानदारी और मेहनतकशी ही उन्हे विरासत में मिली थी। मैं साक्षी हूं उस अनथक, अनवरत संघर्ष का जो सरदारनी अम्मा ने अपनी संतान को देश का सच्चा नागरिक बनाने के लिए किया था। दिन-भर कपडे सी-सीकर घर चलाया उन्होंने और कभी किसी को किसी बात के लिए तरसने नहीं दिया।

सरदारनी अम्मा हिंदू परिवार में जन्मी थीं पर पति के घर में सिख परंपरा का एक समर्पिता की तरह पालन करती थीं। वह उनके रक्त में रच-बस गई थी—ऐसे ही जैसे फूल में सुगंध। उनके दो बेटे केशधारी थे, दो मोने; पर हर शुभ अवसर पर वे गुरु ग्रंथ साहब का पाठ करवाती थीं। उन दिनों घर में वह गहमा-गहमी मचती कि देवता भी धरती पर उतर आते। तीन दिन धूप-धूनी, झांझ-मंजीरों के साथ अखंड पाठ चलता। सवेरे ही सिर पर रुमाल डालकर मैं नास्तिक भी ग्रंथ साहब के आगे मत्था टेकता, भेंट चढाता, कुछ देर पाठ सुनता और अंत में कडाह प्रसाद लेकर लौटता। "आसा दी वार" के समय सरदारनी अम्मा बडी तेजी से जीना चढकर आती और उलाहना देती, "ओए भइए (मुझे वह सदा भइए कहकर पुकारती रही हैं) ओत्थे आसा दी वार होंदी पयी और तू एत्थे बैठा। छेती नाल आ जा, सब तेरी राह देखते।"

मैं तुरत भीगी बिल्ली की तरह पीछे-पीछे जीना उतर जाता और पहले से ही वहां बैठी सुमति मेरी ओर देखकर व्यंग्य से मुसकरा देती। वह खाटी सिख परिवार की बेटी है। हम दोनों एक साथ पढते थे। वहीं प्रेम हुआ। कोर्ट मैरिज की थी हमने, पर सुमति जब-तब शरारत करने से बाज न आती। सरदारनी अम्मा से मेरी शिकायत करती रहती, "देखो अम्माजी! इन्हें समझाओ न। ईश्वर, धर्म-कर्म, किसी में जरा भी आस्था नहीं इनकी।"

सरदारनी अम्मा उलटा उसे ही उलाहना देतीं, "अरी, तू भी कैसी सिक्खनी है, एक मर्द दा मन नहीं बदल सकी।"

सुमति बिना सोचे-समझे बोल उठती, "बडे आए मर्द। पहली ही मुलाकात मे चारो खाने चित्त कर दिया था।"

लेकिन दूसरे क्षण जैसे ही अपने शब्दो का अर्थ समझती तो मुह मे कपडा ठूसकर भाग खडी होती। तब सारा वातावरण मुक्त अट्टहास से गूंज-गूंज उठता।

वही गूंज आज हिचकोल खाते इस डिब्बे मे मेरी छाती को चीरे दे रही है जैसे पेचकस पेच को अंदर और अदर ऐंठता चला जाता है। कैसे बन जाता है सब कुछ अतीत! जिसको हमने जिया वही स्मृति का रूप कैसे ले लेता है

उनका पडोसी बने अभी साल ही हुआ होगा कि देखता हू, कभी-कभी मनजीत मेरे पोस्ट बॉक्स मे से डाक निकाल लेता है और चिंदी-चिंदी करके इधर-उधर बिखेर देता है।

सुमति बोली, "सरदारनी अम्मा से मैने कहा था। वे नाराज हो गई। बोली तक नही सवेरे से। और मनजीत तबसे चिल्ला रहा है, 'फाडूगा और फाडूंगा, बक्सा तोड दूगा।' "

मुझे भी यह सब अच्छा नही लगा। बोला, "यह तो बुरी बात है। कुछ करना होगा।"

पर मैं नीचे जाकर नाटक नही करना चाहता था। चाहता था, किसी समय अम्माजी से बात करूं लेकिन देखता हू कि सरदारनी अम्मा तभी ऊपर चली आ रही है। बेहद गभीर स्वर में कहती हैं, "बहू! बच्चे तो राम मोर बंदर होन्दे हैं। जितणा टालोगे उन्ना ही हौर अडनगे। तुम ताला पा दो बक्से इच। इणादा क्या है। मै तो बहुत टालिया पर रूड पुड जागिए एक नह सुणदे।"

फिर उनका गला भर आता और मै व्यस्त होकर बोल उठता, "अरे अम्माजी, आप भी किस बात के लिए परेशान हो रही है। ये बदर शैतानी नहीं करेंगे तो क्या सुमति और मै करेंगे। मैं समझा दूंगा मनजीते को ।"

तभी मेरी नजर मनजीत पर पडती है। वह न जाने कब तक वहा खड़ा हो गया है। अपना नाम सुनकर बोल उठता है, "भाई साहब! मैंनू यह सवाल नही आदा। समझा दीजिए।"

"ओय, तू मेरी डाक क्यू फाडदा है?'

"अब नहीं फाडूंगा।' मनजीत ऐसी मासूमियत से कहता है कि हम सब खिलखिला पडते है। हर छोटे-मोटे झगडे के बाद इस तरह खिलखिलाना मन को कैसा पवित्र कर जाता है। वाद से विवाद की ओर न जाकर संवाद की ओर लौट पडते है हम।

यही मनजीत एक दिन आयु की चिंता किए बिना मेरा सबसे प्यारा दोस्त बना। जब मैने अवकाश प्राप्तकर इलाहाबाद में बसने का निश्चय किया तो सबसे ज्यादा वही परेशान हुआ था। बराबर चिट्ठी लिखता। बराबर मिलने आता। अभी दस दिन

पहले ही तो आया था और कह गया था, "ओय भाभिए! लडकी मैने ढूढ ली है, पर जब तक तू हां नहीं करेगी, मैं शादी नही करूगा।"

सुमति हँसी थी, "तब जन्म-भर बैठे रहना कुंआरे।"

"मैं तो बैठा ही रहूगा, पर दर्द तुम्हे ही होगा. ."

मै तेजी से गरदन को झटका देता हू पर दृश्य तो बवंडर की तरह स्मृति के द्वार से होकर मन के पटल पर बिखर जाते हैं। सरदारनी अम्मा सवेरे-सवेरे कोयलो की अगीठी जलातीं तो हमारा कमरा धुएं से भर जाता और तब बहुत देर तक उसकी कडवाहट दिलोदिमाग को उत्तेजित किए रहती। एक दिन साहस करके सुमति ने कहा, "अम्माजी! आज तो धुआं कुछ बहुत ही उठ रहा है।"

अम्माजी बोलीं, "वहू! मै क्या नही जानदी पर करां की। साडे घर दा कडवा धुआं तो ऊपर ही जांदा है जीवे तुहाड्डे घर दा गंदा पानी थल्ले ही आवगा। उणादा सुभाव ऐ ही जो ठहरा। असी की कर सकणे।"

सुमति क्या जवाब दे लेकिन उनकी बेटी सुरिंदरकौर कभी-कभी बडा सटीक जवाब देती। पढा होगा किसी किताब में, पानी का स्वभाव नीचे जाना, धुए का स्वभाव ऊपर जाना और आदमी का स्वभाव लड़ना।

मुझे खूब याद है, सरदारनी अम्मा एक बार तो लगभग चीख उठी थी, "ओय रुड पुड जाणिए! किथ्थो पढ़ा सी तूने यह सब। आदमी दा स्वभाव लडना नहीं, प्यार करना है।"

सुरिंदर बोली, "ए वी मैन्नू पता है। लडन दे बाद ही तो प्यार किया जांदा है।"

सरदारनी अम्मा अब हँसे सो हँसे, "ओय कुडिए, तेरे पेटिच तो बड़ी लंबी दाढी है "

कितनी-कितनी प्यारी यादें, पर कितनी पीडा देने वाली! क्या सोच रही होगी सरदारनी अम्मा आज? कैसा लग रहा होगा उनका वह भरा-भरा चेहरा।

कैसे बन जाता है हैवान भला-चंगा इनसान। कैसे ढहाने लगता है। कहर बेगुनाहों पर? कैसा लगा होगा मनजीत को ..

तीर की तरह एक हूक उठती है और मेरी चेतना चिथड़े-चिथड़े होकर बिखर जाती है। फिर मुझे कुछ पता नही रहता कि कब गाजियाबाद आया और कब सुमति ने मुझसे कहा, "एक प्याला चाय ले लो।"

मै आंखें खोलता हू। सुमति की सूजी हुई लाल-लाल आंखे मुझ पर झुकी हुई है। जानता हूं, वह भी रात-भर नहीं सोई। मैं सप्रश्न उसकी ओर देखता हूं। वह समझ जाती है। कहती है, "मैं भी ले रही हूं, उठो।"

यंत्रवत् हम चाय का एक-एक घूंट भरते रहते हैं। हर घूट के साथ कुछ चेहरे आखों मे तैर जाते है कि अचानक मेरी दृष्टि समाचार-पत्र पर पडती है जो मेरे सामने

की सीट पर एक सहयात्री ने खरीदा है मैं उसे उठा लेता हूं मुखपृष्ठ पर वही पंजाब के आतंकवादियों के बारे में रिपोर्ट है बाक्स में भी एक समाचार है धार्मिक उन्माद और पागलपन की भी एक सीमा होती है। अभी चार दिन पहले अमृतसर में बेगुनाह डा सर्वजीतसिंह की हत्या इसलिए कर दी गई थी कि वे केशधारी नहीं थे। कल उनके छोटे भाई मनजीतसिंह की हत्या हरियाणा में करनाल के पास इसलिए कर दी गई है कि वे केशधारी थे ''

चाय का पात्र हाथ से छूट जाता है। मैं काल और दिक् से निरपेक्ष शून्य में डूब जाता हूं। सुमति की लाल-लाल डरावनी आंखें जैसे फट जाती हैं—सीमाहीन विस्तार में

पता नहीं कैसे हुआ यह सब। कैसे हम उस घर की ड्योढी तक पहुंचे। मौत का गहरा सन्नाटा व्याप्त था वहां। एक शब्दहीन अंतर्रुदन में लिपटा था सब कुछ। कौन है वह सामने शोकाकुल महिलाओं से घिरी खंभे से टिकी एक पत्थर की मूरत, बाल बिखरे, आंखें मुंदी, चेहरा भावशून्य, एक जिंदा लाश...

सुमति बदहवास दौड़ती है और ब्रह्मांड को भेदता एक शब्द 'अम्माजी .' निकलता है उसके मुख से। फिर वहीं उस मूरत के पास ढेर हो जाता है। आपाद-मस्तक सिहरता-कांपता मैं पूरी शक्ति लगाकर अपने को समेट रहा हूं और उस मूरत के पास सरक रहा हूं कि उसमें जुंबिश होती है, धीरे-धीरे पलकें उघड़ती हैं, पुतलियों में हरकत आती है और वे मुझ पर टिक जाती हैं। कुछ टटोलती-सी। धुंध के पार दहकते दो शोले, पूरा वातावरण धधक रहा है उनमें..

मुझमें साहस नहीं है उस ताप को सहने का। ताज्जुब यही है कि अभी जिंदा कैसे हूं मैं कि उसी क्षण दूर क्षितिज के उस पार से एक आवाज उभरती है, जैसे पिघलता शीशा उंडेल दिया हो किसी ने मेरे कानों में "आ गया तू भइये। देख लिया, वाहे गुरु ने राम नूं कतल कर दिता, राम ने वाह गुरु नूं। दोनों नस गए। स्यापा मुका..."

एक क्षण के लिए एक बेआवाज, बेलौस हँसी उभरी उस पत्थर चेहरे पर और फिर सब कुछ पूर्ववत् हो गया।



इसका जवाब दिया रमेश के
सकेगा और जानने का महत्त्व ही

''पर आपका बेटा क्या ...?

वृद्ध के नयन फिर चिपचिपा
डरकर कहीं भाग गया।''

''जी हां, हिंदू हिंदू को नहीं

''अजी कुछ न पूछो, आजक

''आज की बात नही है।

''हैं क्यो नहीं?''

रमेश के मित्र हँस पडे, ''
मुसलमाननुमा सूरतें दिखाई देती हैं

और यह कहकर वे और
लगी जैसे कोई मरघट में हँस पड
की बात नही सोचते? वहा तो

''नहीं बचा है तो अच्छा है

नीचे बैठे हुए अधेड व्यक्ति
अता-पता लगा?''

''जी हां, सुना है, वह क
उनसे पता लगा है कि वह भी

रमेश के पीछे जो व्यक्ति
आती। स्कूल से भागकर लडक
गया?''

रमेश सबकी बाते सुन
बार-बार वृद्ध सज्जन पर जा
इनका बेटा स्कूल में परीक्षा देने
नही लौटेगा? उसकी मा ने प्यार
अच्छे करना और देख, सीधा
खिलता हुआ स्कूल गया होगा
होगी, उसने वह दर्दनाक खबर

रमेश कापा। उसने गरद
को देखा—वे उसी तरह कह
थी। उसे वे लोग भगाकर ले

''आपने अखबारो मे

''जी हा, अखबारों में

अथाह

खींची। तभी सहसा एक वृद्ध व्यक्ति ने
आ जाने दीजिए।''

न दिया। एक साथ अनेक क्रुद्ध आंखे उस
नही तो विश्वामित्र या दुर्वासा की तरह वे
कि रमेश के मित्र ने चुपचाप दरवाजा खोल
-घुस आए क्योंकि अनेक नवयुवकों ने
की थी। आ गए तो देखा—उनकी देह
आंखों मे ऐसा कुछ है कि न देखते बनता
ऐसे बद होती हैं कि हरहराकर फिर खुल
होती, ऐसा लगता है जैसे कोई उसे आरी

दूसरे लोगो का ध्यान उस वृद्ध की ओर
वाद में व्यस्त थे, धीरे-धीरे फुसफुसाते और
य और करुण, पाखाने के पास खडे थे।
बैठे थे, वे एकटक वृद्ध की ओर देख रहे
प यहां बैठ जाएं।''

मानी हो चले हों, फिर बैठते-बैठते कहा,

जा रहे हैं?''

वृद्ध के अतर्मन पर चोट की हो। एक क्षण
हां भी भाग्य ले जाएगा, जाऊंगा।'' कहते-
। होंठ हिले, पलकें मुंद-सी गई। खुलीं तो
उस व्यक्ति के पास एक युवक बैठा था।

खिड़कियां

तब तक एक और अधेड़ व्यक्ति का ध्यान उधर खिच आया। वे बोले "शायद आपका कोई रिश्तेदार खो गया है? आजकल गुमशुदगी की घटनाए बहुत हो रही हैं।"

"शायद वह आपका बेटा है?" तीसरे आदमी ने कहा।

रमेश ने एक बार उन आदमियो को देखा, फिर उस वृद्ध को। फिर उन आदमियो को देखा और और फिर उस वृद्ध को कि वृद्ध बोले, "हां बेटा! तुम ठीक कहते हो। मेरा बेटा ही खो गया है।"

"मैने कहा था न," अधेड़ सज्जन बोले, "वह तो आपकी सूरत ही कह रही है। बेटे का दर्द ही अलग होता है।"

"क्यो जी, दिल्ली में था?"

"जी हां।"

"कित्ता बडा था जी?"

"सोलह वर्ष का था।"

डिब्बे की एकमात्र स्त्री ने अपने बच्चे को गोद में अदर को खीचकर धोती का पल्ला उढा दिया। ऊपर की बर्थ पर लेटे हुए महाराष्ट्रीय सज्जन ने अब पूछा, "क्यो जी, कैसे चला गया था?"

"जी, स्कूल गया था।"

"और फिर लौटकर नहीं आया। मेरे एक दोस्त है, उनका लड़का भी स्कूल गया था, आज तक नहीं लौटा।"

सुनकर वृद्ध कुछ अस्पष्ट स्वर मे बुदबुदाए, पर प्रश्नकर्त्ता ने फिर प्रश्न किया, "कितने दिन हो गए जी?"

"यही दो महीने से कुछ ज्यादा।"

"दो महीने? तब तो दिल्ली में बडी मार-काट मची हुई थी।"

वृद्ध ने गहरी सांस खींची, कहा, "तभी की बात है। स्कूल मे इम्तहान हो रहे थे। अचानक कुछ लोगो ने हमला कर दिया।"

"मुसलमानों ने किया होगा।" महाराष्ट्रीय सज्जन बोल उठे।

"जी नहीं।"

"तो?"

"तो आप समझ लीजिए उन लोगों ने एक जाति के सभी लडको को मार डाला. ।"

"सबको?"

"जी हा।"

अवाक्-अपलक यात्रियों ने एक-दूसरे को देखा। सबके मन भय और वेदना के धुए से घुट रहे थे। एक व्यक्ति ने पूछा, "कितने होगे जी?"

इसका जवाब दिया रमेश के मित्र ने, ''किनने थे, यह कभी कोई नहीं जान सकेगा और जानने का महत्त्व ही कितना है?''

''पर आपका बेटा क्या . ?'' ट्रंक पर बैठे हुए युवक ने सकुचाते हुए पूछा।

वृद्ध के नयन फिर चिपचिपा आए थे। बोझिल वाणी में कहा, ''कहते है, वह डरकर कहीं भाग गया।''

''जी हां, हिंदू हिंदू को नही मार सकता।''

''अजी कुछ न पूछो, आजकल तो. .''

''आज की बात नहीं है। आज मुसलमान हैं कहां?''

''हैं क्यों नहीं?''

रमेश के मित्र हँस पडे, 'मुसलमान अब हिंदुस्तान में नही हैं, मेरे दोस्त! जो मुसलमाननुमा सूरतें दिखाई देती हैं, वे उनकी लाशे हैं, चलती-फिरती लाशें।''

और यह कहकर वे और भी जोर से हँसे। वह हँसी डिब्बेवालों को बहुत बुरी लगी जैसे कोई मरघट में हँस पडा हो। महाराष्ट्रीय सज्जन ने कहा, ''आप पाकिस्तान की बात नहीं सोचते? वहां तो एक भी हिंदू नहीं बचा है।''

''नहीं बचा है तो अच्छा है, तडपना तो नहीं पडेगा।''

नीचे बैठे हुए अधेड व्यक्ति ने उधर ध्यान न देकर फिर पूछा, ''क्यों जी, कुछ अता-पता लगा?''

''जी हा, सुना है, वह कराची चला गया है। वहां से जो लोग बंबई आए हैं, उनसे पता लगा है कि वह भी शायद बबई आ गया है। वही जा रहा हूं।''

रमेश के पीछे जो व्यक्ति बैठे थे, उन्होने धीरे से कहा, ''बात समझ में नहीं आती। स्कूल से भागकर लडका घर क्यों नहीं आया? कराची क्यों गया और कैसे गया?''

रमेश सबकी बातें सुन रहा था, परतु बोलता नहीं था, क्योकि उसकी दृष्टि बार-बार वृद्ध सज्जन पर जा अटकती थी। वह सोचने लगता था—उस दिन सवेरे जब इनका बेटा स्कूल में परीक्षा देने गया होगा, तो क्या इन्होंने सोचा होगा कि वह अब नहीं लौटेगा? उसकी मां ने प्यार से उसे दही और लड्डू खिलाया होगा, ''बेटा! परचे अच्छे करना और देख, सीधा घर आना। आजकल बुरे दिन हैं।'' और फिर बेटा खिलता हुआ स्कूल गया होगा और फिर सध्या को जब वह बेटे की राह देख रही होगी उसने वह दर्दनाक खबर सुनी होगी। तब...तब ..

रमेश कांपा। उसने गरदन को झटका दिया। उसके नयन भर आए। उसने वृद्ध को देखा—वे उसी तरह कह रहे थे, ''उसे घूमने का बहुत शौक था। उमर भी चंचल थी। उसे वे लोग भगाकर ले गए।''

''आपने अखबारों में निकलवाया है?''

''जी हा, अखबारों मे भी निकलवाया है, रेडियो पर भी एलान हुआ है, पर आप

जानते हैं, वहा हमारे अखबार नहीं जाते, न कोई रेडियो सुनता है।"

रमेश का मस्तिष्क घूम-फिरकर फिर वही आ गया। खबर लाने वाले ने कहा होगा, "स्कूल मे कत्लेआम मच गया। सब बच्चे मार डाले गए।" तब हतभागिनी-सी उसकी मा के हृदय से एक तेज चीख निकली होगी और अपने बच्चे को देखने के लिए आतुर वह पागल-सी बाहर भागी होगी। किसी ने कहा होगा, "ठहरो बीवी। वहा खतरा है। अभी इन्तजार करो।" और उसने इंतजार किया होगा। शायद अब तक कर रही है। अभी भी वह अपने दरवाजे से बाहर झांककर, उस चिरपरिचित मार्ग को देखती होगी, जिस पर उसका बेटा आता-जाता होगा...

रमेश के लिए सोचना असभव-सा हो गया। वह दिल्ली मे रहता था। उसने उस घटना की चर्चा सुनी थी, पर इससे अधिक नहीं जितनी वह आज सुन रहा था। तभी सहसा उसके मित्र ने कहा, "सामान उठा लो, रमेश। हम यही उतरेंगे।"

गाड़ी धीमी पड़ने लगी और शोर बढ़ चला। रमेश ने ऊपर से होल्डाल उतार लिया। फिर उन वृद्ध को देखा—उस धकापेल में वे उसी तरह शून्य मे ताकते हुए बैठे थे। वह नीचे उतर गया। उतर गया तो जैसे होश आया, परंतु वृद्ध की झुर्रिया और चिपचिपाहट से पूर्ण दृष्टि वह नहीं भुला सका। वे उमड-उमडकर विचारो का तूफान पैदा करती ही रही। कई दिन बाद जब लौटकर दिल्ली आना हुआ, तब भी कभी-कभी बिजली की तरह वह मूर्ति उसके नेत्रों मे कौंध जाती थी। इन्ही दिनों अचानक एक पुराने मित्र मिल गए। कई बार उनका निमत्रण आ चुका था। वास्तव में उनकी पत्नी का बड़ा आग्रह था। रमेश उन्हें भाभी कहता था। वे कार में बिठाकर उसे घर पर ले गई। चाय का वक्त था, बिना पुकारे नौकर मेज पर सामान जुटा गया और भाभी चाय तैयार करने लगीं। मित्र किसी जमाने में कालेज के प्रोफेसर थे। काग्रेस आदोलन मे बहुत दिन जेल काटी। अब शरणार्थी विभाग में कोई बड़ा-सा पद उन्हें मिला था, इसलिए यह स्वाभाविक था कि चर्चा 'सब रास्ते राम को जाते हैं' वाली कहावत के अनुसार हर कहीं होकर शरणार्थियों की समस्या पर आ अटकती थी। बातो-बातो मे रमेश उन वृद्ध की चर्चा कर बैठा। अचरज से मित्र ने मुसकराकर कहा, "मै उन्हे जानता हूं।"

रमेश ने पूछा, "क्या वे आपके पास आए थे?"

"कई बार आए हैं। उनको पूरा यकीन है कि उनका लडका कही न कही जिंदा है।"

"पर क्या यह सच हो सकता है?"

"असंभव। वह उसी दिन मारा गया होगा।"

"पर वह तो हिंदू था।"

मित्र मुसकराए, "मौत जाति नही पूछती। और वह तो सामूहिक वध था। बहुत मुमकिन है, हत्यारे उसे न पहचान सके हो।"

"शायद।"

"और नही तो वह कहा जाता?"

"पर उसकी लाश।"

बात काटकर मित्र ने कहा, "ऐसे मौको पर जो कुछ होता है वह क्या बताना होगा? कौन कह सकता है, कितनी लाशे उन्होंने जला या दबा नहीं दी होगी? तब तो गिनती कम करने का प्रश्न होता है।"

भाभी ने प्याला ठक् से मेज पर रख दिया और करुणा मे उद्वेलित होकर अंग्रेजी मे कहा, "आदमी कितना बर्बर हो गया है।"

मित्र हँसे, बोले, "आदमी वास्तव में बर्बर ही है। कौन कह सकता है, मै कब तुम्हारा गला नही घोट दूंगा। कम-से-कम मुझे तो इसमें कुछ असंभव नहीं लगता। और फिर इधर जो कुछ हम देख चुके है, वह तो संभावना को प्रमाणित करने वाला है। हा कुछ लोग मानते है कि एक दिन मनुष्य शारीरिक बल की तरह बौद्धिक बल का परित्याग करके सम्मिलित जीवन को प्राप्त करेगा। पर जब तक बुद्धि है, बर्बरता से छूटने का कोई उपाय नही है।"

रमेश ने चाय का घूंट भरा और फिर कहा, "भविष्य में क्या होगा, इस पर विचार करने से इतना लाभ नहीं है, जितना वर्तमान पर। मै कहता हूं, वे क्यों नहीं मान लेते कि उनका लडका अब दुनिया मे नही रहा। इस दुःख को स्वीकार किए बिना क्या उन्हें शांति मिलेगी?"

"दुःख तो यही है," मित्र बोले, "उन्होने इस दुःख को स्वीकार नहीं किया है। विधि के इस दान का तिरस्कार ही उन्हें साल रहा है।"

भाभी ने पूछा, "तुम इसे विधि का दान कहते हो?"

"कोई चिंता नहीं," वे बोले, "तुम इसे व्यक्ति का दान कह सकती हो।"

रमेश ने सिगरेट जलाई और दियासलाई को बुझाते हुए कहा, "तो तुम उन्हे समझाते क्यो नहीं?"

"समझाना चाहता हू," मित्र ने धुए के उठते हुए बादलों के उस पार ध्यान से देखा, "पर उनकी आंखें देखकर कलेजा मुह को आने लगता है। कुछ कहने को मन नही करता। बुद्धि बहुतेरा जोर लगाती है, पर उनकी दृष्टि "रमेश, मैं तुमसे क्या कहू, सब विचारो को पाश-पाश कर देती है। तब मैं सोचता हू, आज यदि मुझमें नारद की शक्ति होती तो अपने तपोबल से, राजा के बेटे की तरह, उनके बेटे की आत्मा को बुलाकर दिखाता कि जिसे वे अपना बेटा समझे थे, वह उनका दुश्मन था। तभी तो बुढापे मे तडपाकर चला गया।"

रमेश ने उनका प्रतिवाद करना चाहा, "पर तभी दखा, कोई अदर चला आ रहा है लेकिन यह देखकर कि साहब अकेले नही है, वह ठिठक गया। न जाने क्या हुआ, दूसरे ही क्षण रमेश चौंककर उठा, "अरे, ये तो वही वृद्ध हैं!"

मित्र मुडे, ''कौन?'' और फिर खडे होकर कहा, ''आइए, चले आइए। ये मेरे मित्र है।''

आज उनके वेश में इतना ही परिवर्तन था कि हजामत बढ गई थी और उसने उनके मुख की भयकरता को और भी गहरा कर दिया था। वे बैठ गए तो मित्र ने कहा ''चाय पिएंगे?''

एक फीकी-सी मुसकराहट झुर्रियो मे उठी और वहीं खो भी गई, बोले, ''चाय पिऊंगा, पर पहले मेरी बात सुन लो। मुझे निश्चित रूप मे पता लगा है कि किशोर मुलतान कैंप में है।''

''जी, मुलतान?'' मित्र विस्मित-चकित बोल उठे।

''जी हा, मुलतान कैंप में। बबई में एक सज्जन मिल गए थे। वे सिंध से आए थे। मैने उन्हें हुलिया बताया। ठीक उसी तरह का एक लडका उन्होने मुलतान कैंप मे देखा था। वही रंग, वही आखे, वही कपडे। नीला निकर, सफेद कमीज, नीली धारी की जुराबें और काला जूता। माथे पर दाहिनी ओर चोट का निशान भी उन्होंने बताया। अग्रेजी बोलना पसद करता है और शरारती है।''

रमेश ने देखा, कहते-कहते वृद्ध की आंखें ऐसे चमकी जैसे घोर अधकार मे रह-रहकर जुगनू चमक उठता है। मित्र ने साहस करके पूछा, ''पर वह मुलतान कैसे जा सकता है?''

उन्होंने दृढता से कहा, ''वह मुझसे अकसर मुलतान जाने की बात कहा करता था। सच तो यह है कि उसे पंजाब से बहुत प्यार था। जान पडता है, वह जान बचाने के लिए स्कूल से भाग गया। स्टेशन पास था। कोई गाडी जाती होगी, उसी मे बैठकर चला गया।''

''हो सकता है।''

''जी हां, यही हुआ है!''

''तो फिर?''

''तो आप कृपा करके मुलतान कैंप के इंचार्ज को लिख दें। जरा अच्छी तरह लिख दे। आपकी दया से उसका पता लग गया तो ''

आसू न जाने कहां रुके थे। झुर्रियो मे अटक-अटककर बहने लगे। रुंधे गले से उन्होने अपनी बात जारी रखी, ''आपने मुझ पर बहुत मेहरबानियां की हैं। मै उन्हे नही भुला सकता। एक बार और कोशिश कर देखिए। उसकी मा को पूरा यकीन है कि वह मुलतान कैंप मे है।''

और फिर सदा की तरह जेब से एक चिट्ठी निकालकर उन्होंने कहा, ''उसकी मा ने यह चिट्ठी लिखी है। आप भी कैंप इंचार्ज को लिख दें कि वह उसे समझा दे कि बेटा, तुम्हारी मा तुम्हारी याद में तड़प रही है। तुम इसी वक्त चले जाओ, नही तो हम दोनो मर जाएगे।''

एक बार फिर कुर्ते की जेब मे हाथ डाला। कई नोट निकाले और बोले "किशोर की मां ने कहा है, पैसों की चिंता न करे। जो कुछ है, उसी का है।"

मित्र की अवस्था बडी विषम थी। वे एकटक अपने नीचे धरती को देख रहे थे वह न हिलती थी, न डुलती थी। नोटो की बात सुनकर उन्होंने दृष्टि उठाई और कहा, "इन्हे आप रखिए। पता लगने पर यदि जरूरत हुई तो मै फिर मगवा लूगा। और देखिए, आप अपना खयाल कीजिए। क्या हालत हो गई है। आपको अब समझ लेना चाहिए "

बात काटकर उन्होंने कहा, "मै सब समझता हू। न समझता तो क्या अब तक जीता रहता। पर किशोर की मां की बात अलबत्ता है। खाट से लग गई है। हर वक्त दरवाजे पर आखे गडाए बैठी रहती है। कोई वक्त-बेवक्त दरवाजा खटखटाता है तो चिल्लाकर कहती है, 'देखो तो कौन है? शायद किशोर है।' "

फिर जैसे वे कहीं खो गए। जैसे कठ भावों के उन्मेष में जकड गया। कई क्षण शून्य में ताका किए और सन्नाटा गहर-गहरकर सबके दिलो को कचोटता रहा। उन्होने ही कहा, "आप मेरी चिंता न करें। आप बहुत अच्छे हैं, बहुत अच्छे। बस, आप उन्हे लिख दें। बहुत-बहुत विनती करके लिख दें कि अपना काम है। समझें, वे अपना ही बेटा ढूंढ रहे हैं।"

और अपनी डबडबाई आंखो को कोहनी से पोंछकर वे उठे, "तो मैं जाऊं? आप लिखेंगे?"

"जरूर लिखूंगा और हो सका तो मै आपके जाने का प्रबध भी कर दूंगा।"

वे मुडे। श्वास फूलने लगी, जैसे कोई सपदा मिली हो, कहा, "सच?"

"देखिए, कोशिश करूगा। चाय पीजिए।"

रमेश एकटक उनके मुख को देख रहा था। उन झुर्रियों में शिशु की सरलता उमड रही थी और वे दयनीय तथा डरावनी आंखे एक मधुर प्रकाश से भर उठी थी, जैसे वे किसी सुहावने स्पर्श का अनुभव कर रहे हों। उन्होंने कहा, "पीऊगा, एक दिन आप सब लोगों के साथ अपने घर बैठकर पीऊंगा। तब तक किशोर भी आ जाएगा। वह दिन अब दूर नहीं है। मैं जानता हू, वह मुलतान कैंप में है, क्योकि जब घर मे आपके पास आने को चला था, तो मैंने रास्ते में एक मुरदा देखा था।"

अंतिम बात उन्होंने बडे धीरे से कही और कहकर शिशु की तरह हँस पडे। रमेश से देखा नहीं गया। उसने मुंह फेर लिया और वे जिस तरह आए थे उसी तरह चले गए। चाय ठंडी हो गई थी और साथ ही उन दोनो के दिल भी। भाभी भी अदर चली गई थीं। कुछ देर उन्हीं से बाते करके रमेश लौट आया। मन उसका और भी अशात हो गया। उसने सोचा—यह कैसा अप्राकृतिक जीवन है। इस छलना का अत होना ही चाहिए, होना ही चाहिए।

बुद्धि जब सोचती है तो उसके पास रास्तो की कमी नहीं रहती। रमेश को

आखिर वह राह दिखाई दी एक दिन बड़े तड़के उठकर उसने वृद्ध के घर पर जाने का निश्चय कर डाला जो कुछ हुआ वह बुरा था पर उस बुरपन की सपदा की तरह सहेजकर रखना तो निरा पागलपन ही नहीं, देश के साथ विश्वासघात भी है। उन्हें साफ-साफ कहना होगा 'तुम्हारा बेटा मर चुका है। और केवल तुम्हारा बेटा ही नही मरा है, असंख्य मां-बापो ने अपनी गोदी के लाल गंवाकर आजादी पाई है। मा के बधन काटने के लिए संतान को प्राण होमने ही पडते हैं। मौत आजादी का पारितोषिक है। इसके लिए तुम्हे गर्वित होना चाहिए।'

बहुत ढूंढने पर उसे घर मिला। एक पचायती मकान मे उनका कमरा था। कुछ कपन-सा हुआ। वैसे सर्दी के दिन थे। ऊपर तक कपडे लाद लेने पर भी वायु त्वचा का संसर्ग प्राप्त कर लेती थी, इसलिए मफलर को जरा ठीक करके दरवाजे पर दस्तक दी, तो पता लगा वह खुला पडा है, गिरते-गिरते बचा। तनिक-सा खोलकर झांकना चाहा कि तभी सुना, कोई बोल रहा है। ठिठककर सुनने लगा। स्वर नारी का था। लगा, थका होकर भी उसमें प्रार्थना का आवेग हैं। सुना, "अच्छा, अब उठो भी। क्या दफ्तर नहीं जाओगे?"

जवाब मिला, "नही।"

"क्यो?"

"क्योकि यह सब झूठ है।"

"सुनो तो।"

"कुछ नहीं, किशोर की मा। अब कब तक हम इस भुलावे मे पडे रहेगे? कब तक झूठ-मूठ मन को बहलाते रहेंगे। किशोर अब नहीं लौटेगा। वह वहां पहुच चुका है जहां से कोई नही लौटता और जहां.."

आगे के शब्द कठावरोध में खो गए। रुदन से फूटी हुई उसास ही रमेश सुन सका, "तुम तो यूं ही दुखी होते हो, जी। भगवान् की माया कौन जानता है। हमारे गाव के गोविंद पंडित का बेटा सात साल में लौटा था। और सुनो तो, मैंने आज सवेरे एक सपना देखा है कि किशोर तुम्हारे पीछे-पीछे दरवाजा खोलकर अंदर आया है। उसने नीली निकर, सफेद कमीज, नीली धारी की जुराबे और काला जूता पहना है। कह रहा है, 'मां, मैंने आज का पर्चा बहुत अच्छा किया है, बहुत अच्छा' .और तुम जानते हो, सवेरे का सपना हमेशा सच्चा होता है। लो उठो, मैंने चाय बना ली है। पीकर बडे बाबू के पास हो जाओ। देर हो गई तो वे दफ्तर चले जाएगे। उठो। उठो भी।"

उसके बाद क्या हुआ, यह जाने बिना रमेश वहा से सीधा अपने घर लौट आया। उसे लगा, उस वृद्ध दंपती का स्वप्न भग करने के लिए उसे जिस हिम्मत की जरूरत थी, उसे प्राप्त करने के लिए अभी उसे बहुत परिश्रम करना होगा।

सत्य को जीने की राह

व्यवधान पड गया तभी। घंटी बज रही थी। दो क्षण बाद श्रीमती खन्ना के पीछे-पीछे गदराए योवन और उदासीन, पर अत्यंत आकर्षक आखोवाली एक युवती ने वहा प्रवेश किया। उसकी उगली पकडे थी शैशव की प्रतिमूर्ति तीन वर्ष की एक बच्ची। वर्ण जितना गौर था, आवाज उतनी ही मधुर थी। युवती ने सीधे खन्ना की ओर देखते हुए कहा, ''अंकल, पापा को पढ़ने के लिए कुछ मैगजीन चाहिए।''

संदीप खन्ना ने साइड टेबुल पर पड़ी पत्रिकाओ की ओर इशारा करते हुए कहा, ''वे हैं न, जो चाहो, ले जाओ।''

फिर बच्ची को अपनी ओर खींचते हुए बोले, ''ओर तुम्हे क्या चाहिए? हाथी वाली किताब?''

''नहीं नानाजी,'' बच्ची ने तुरंत जवाब दिया, ''हमें तो चाकलेट चाहिए।''

बात कुछ इस भोलेपन से कही गई थी कि सभी हॅस पडे। श्रीमती खन्ना तब तक कॉफी का प्रबध कर चुकी थी। बोलीं, ''क्षमा करेंगे विनयजी, मुझे अभी कॉलेज जाना है। बहू भी अपने दफ्तर चली गई है ''

बात काट दी उदासीन आंखोवाली युवती ने, ''मै तो हूं आंटी, मै आ जाऊंगी।''

खन्ना बोले, उसी प्रवाह में, ''आवश्यकता होगी तो आना ही पडेगा।''

सबके जाने के बाद टाइम्स के संवाददाता विनय वत्रा ने पूछा, ''क्या यह सुरजीत सिह की बेटी नहीं है? अभी, अभी मैंने उन्हे अपनी बालकनी मे बैठे देखा था।''

''जी हां, यह उन्हीं की बेटी है,'' संदीप खन्ना ने उत्तर दिया और मौन हो गए। दो क्षण बाद बोले, धीरे-धीरे शब्दों को तोलते हुए, कहीं दूर से, ''अच्छा हुआ तुमने दोनो को देख लिया। तुमने पूछा था न कि सुरजीत सिंह और उसके परिवार को अपने घर में पनाह देकर मैंने अपने-आपको और अपने परिवार को क्यों संकट में डाला? बहुत-से उत्तर दिए जा सकते है इस प्रश्न के, परंतु विनय, मैं तुम्हे वह कुछ बताना चाहता हूं, जो किसी को नहीं बता पाया. .''

संदीप खन्ना फिर मौन हो रहे। विनय को लगा कि न जाने कहीं से आकर उस मौन मे असंख्य घंटियां बज उठी है और उनके ऊपर से होकर आता हुआ संदीप खन्ना का स्वर किसी रहस्य के अधकार को अनावृत कर रहा है।

संदीप खन्ना कह रहे थे, ''जिस समय उस पागल भीड ने मेरे मकान पर

आक्रमण किया उस समय सहसा मुझे ऐसा लगा कि क्षण भर में मैं सैंतीस वर्ष की लंबी अवधि पार करके सन् 1947 में जा पहुंचा हूं सब कुछ वैसे का वैसा कोलाहल करते पागल लोग, कड़वे धुएं से भरा आकाश, नर-मांस की चिरांध से गंधाता वातावरण। कभी स्टेनगन गनगना उठती, कभी नाना रूप नारे गूंज उठते और गूंजते ही रहते।

"ठीक याद है मुझे, उस दिन कृष्ण-जन्माष्टमी थी, पर किसी कृष्ण ने जन्म नहीं लिया था। लिया होता तो आज. "

सदीप खन्ना फिर मौन हो गए। विनय बत्रा उनके निरंतर कठोर होते रक्तहीन चेहरे को देखे जा रहे थे। कुरसी पर बैठे-बैठे उन्होंने जुंबिश की और जैसे सचमुच भूतकाल में झांक रहे हों, वे बोले, "तब भी हम पडोसी थे, मैं और सुरजीत। और जवान भी, मुसलमानों के विरुद्ध उन्माद की सीमा तक निर्मम, ऐसा लग रहा था मानो महानाश के स्वामी रुद्र ने अपना तांडव नृत्य शुरू कर दिया है और निरंतर एक तार पर बजते घुंघरुओं की कर्कश ध्वनि और अट्टहास के गर्जन ने प्राणी मात्र की चेतना को लील लिया है। वे बस, यंत्र मात्र है उसकी सर्वभक्षी इच्छा के। जिस समय दिल्ली महानगर की बस्तियां जल-झुलसकर राख हो रही थीं, उस समय सुरजीत और मैं, भय और घृणा के सैलाब में बहते हुए वहां जा पहुंचे जहां एक खंडहर होते मकान में एक सत्रह-अठारह वर्ष की सद्यौवना को छोडकर कोई नहीं बचा था। उसने अपने को अपने ही मां-बाप और भाई-बहनों की लाशों के नीचे छिपाकर बचा लिया था। कितनी अदम्य है जीने की लालसा! लाशों के ढेर से अपने को अलग करने की प्रक्रिया में उसकी दृष्टि हम पर पडी। एक चीख निकल गई उसके कंठ से, 'न .न...ई ..नहीं...

"फटे वस्त्रो और अस्त-व्यस्त लंबे घने काले केशों में भी वह भयातुर और सहमी फाख्ता-सी बहुत सुंदर लग रही थी, और हम लोगों के चेहरों पर से इनसानियत की नकाब कभी की उतर चुकी थी। सुरजीत ने चील की तरह झपट्टा मारकर उस लडकी को दबोच लिया। मैंने अनुभव किया कि तब हमारी हथेलियों में शेर के पंजे उग आए थे और दांत सुअर के दांतों में बदल चुके थे। पर सच कहता हूं, तब भी क्षण के सहस्रवें भाग में मुझे ऐसा लगा था कि चीखकर सुरजीत से कहूं, 'हरामजादे, उस लडकी को छुआ तो खून पी जाऊंगा।' पर कह कुछ नहीं सका, क्योंकि मेरे अंतर मे भी सोता हुआ चीता अंगडाई ले चुका था। मैं कूदकर उस बदहवास लड़की के कपडे उतारने लगा। एक बार, बस एक बार, ये करुण घिघियाते स्वर मेरे कानों से टकराए थे—'इसके बाद तुम मुझे जान से तो नहीं मार डालोगे.. ?'

"उस नीम बेहोशी में बड़बडाती वह जूही की कली, कैसी मासूम दिखाई दे रही थी। मासूमियत खूबसूरती को और भी मादक बना देती है। उसी मादक खूबसूरती को हम दरिंदे देर तक झिझोडते-नोचते रहे, तब तक, जब तक उसका शरीर क्षत-विक्षत

नही हो गया। बीच मे एक-दो बार उसकी चेतना लौटती-सी लगी। मुरदा पलकों ने जुबिश की और रक्तहीन होठ हिले। शायद, उसने कुछ कहा था, पर हम कुछ नही सुन सके, क्योंकि शब्द आवाज खो बैठे थे।

''न जाने कहा से मक्खियो के झुंड के झुड बहते रक्त और खुले जख्मो पर मडरा रहे थे। चींटियों और मकोडो के लिए तो जैसे किसी ने महाभोज का आयोजन किया था। वे तीव्र गति से 'डबल मार्च' करते हुए लाशों पर कब्जा कर रहे थे। थोडी-थोडी देर में दूर से आते 'अल्ला हो अकबर' और 'हर हर महादेव' के नारे वहा के वातावरण को कंपा जाते और फिर देर तक आंसू गेस के गोले धूम-धड़ाम से फूटते और स्टेनगन से अनवरत दनदनाती गोलियों की कर्कश ध्वनि छाती में बज उठती

''सहसा मैंने देखा कि सब ओर से निस्संग सुरजीत, मजिल पर पहुंचे पंथी की तरह, बड़े सतोष और सब्र से बैठा पान बना रहा है। मलबे के नीचे पानदान न जाने कैसे साबुत बच गया था। उसने दो बीड़े तैयार किए, एक मुझे दिया दूसरा स्वय खाया, फिर परम तृप्ति से दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए उसने कहा, 'आओ, अब जल्दी से कीमती सामान बटोर लें। देर हो गई तो और लोग हिस्सा बंटाने आ जाएगे।'

''कुछ क्षण बाद उस मलबे के नीचे से हम कीमती वस्त्रों और गहनों का एक बक्स निकालने में सफल हो गए।

''एक क्षण के लिए मेरे मन मे एक बार फिर यह विचार कौध गया कि जो कुछ हम कर रहे है वह तत्कालीन परिस्थितियो मे अनुचित भले ही न हो, मानवीय तो किसी भी दृष्टि से नहीं है उचित होना ही मानवीय होने की शर्त नही है

''तभी सुरजीत ने पुकारा, 'देखो-देखो, वह होश में आ रही है।'

''एक ठडी सिहरन दौड़ गई मेरी रगों में। वह लहूलुहान लड़की होश में कैसे आ सकती थी? शायद, मेरी तरह सुरजीत के भीतर भी अपराध भावना जागी थी और उसी भावना से प्रभावित होकर उसे लड़की के होश में आने का भ्रम हुआ था..

''इतने में उसी तरह की एक आर्त चीख सुनी मैने। सुरजीत ने कृपाण से उस लडकी का सीना चीर दिया था। एक बार शायद उसका चेहरा ऐंठा था या वह भी मेरा अपराध-बोध ही था! दूसरे ही क्षण लाश की जद्दोजहद करने की सारी शक्ति समाप्त हो गई, पर समाप्त नहीं हुई हमारी जानवर होने की क्षमता। सुरजीत सिंह ने मुझसे कहा, 'यह लाश उठाकर बाहर ले चलो।'

''आज विश्वास नही कर पा रहा, पर उस दिन मैंने उसके आदेश का तुरंत पालन किया था। बाहर गली मे एक सफेद घोडे का शव पडा था। उसने उस लडकी के शव को उस घोडे के शव के साथ सटाकर ऐसे लिटा दिया कि उनकी टांगें एक दूसरे मे उलझ गई। सुरजीत ने एक क्षण परम संतोष से उसे देखा और कहा, 'सुदर लड़कियां जानवरों को भी पसद करती हैं!'

''फिर हमने जोर का अट्टहास किया और सामान से लदे-फदे विजयी योद्धाओ

की तरह गली से बाहर आए और किजयोल्लास से चीखती चिल्लाती भीड में जा मिले नागरिकों की रक्षा के लिए तैनात सैनिक हाथों में स्टेनगन थामे और चेहरों को हेल्मेटों से ढके ऐसे खडे थे मानो घोषणा कर रहे हो, 'हम बुरा कर सकते हैं पर बुरा देख नही सकते।' ''

विनय बत्रा स्तब्ध थे। पूरा समय एक शब्द नही बोले। अब एक विचार कौधा कि व्यवधान पड गया। उदास आंखो वाली सुरजीत की बेटी द्वार खोलकर अदर आ रही थी। दोनो चौंक पडे और अजनबियो की तरह उसकी ओर देखने लगे। सब कुछ गड्डमड्ड हो रह था—यह सुरजीत की बेटी थी या अपने ही परिवारजनो की लाशो के बीच अपने को छिपा लेने वाली वह बदकिस्मत मुस्लिम युवती थी—जिसकी अस्मत को सरदार सुरजीत सिंह और श्री सदीप खन्ना ने झिंझोडा-नोचा था .

सुरजीत की बेटी सहम गई, बोली, ''मैंने शायद, आपकी पोशीदा बातचीत मे खलल डाला। मैंने सोचा था कि शायद, आपको किसी चीज की जरूरत हो।''

अस्त-व्यस्त संदीप खन्ना ने किसी तरह अपने को बटोरा, मुसकराए, बोले, ''न ..न ऐसी कोई बात नहीं है, बेटी। बस, तुम अचानक ही आ गई. .''

आश्वस्त युवती इस बार हँस पडी। जैसे कमरे मे धूप खिली हो, बोली ''अच्छा अकल, पापा कहते है, आप जब जाएं तो उनके साथ चाय पीकर जाए, आप दोनों ''
और उत्तर की अपेक्षा किए बिना जैसे आई थी वैसे ही चली गई, पर इस बार ऐसी सुगध छोड गई कि देर तक वे दोनों मौन-शांत अपने में खोए रहे। दो क्षण बाद मौन भग करते हुए फिर संदीप खन्ना ने ही कहा, ''जिस समय वह बौराई भीड मुझे घेरती जा रही थी, तब सुरजीत की यही लडकी मेरे सामने आ खडी हुई थी, और इसके चेहरे मे उस मुस्लिम युवती का चेहरा गड्डमड्ड हो गया था, जिसे ..कैसे हो जाता यह सब, कैसे? . इसके बाद मै और कर ही क्या सकता था? क्या मैं एक बार फिर अपनी बेटी के शरीर को झिझोडता या झिंझोडे जाते देखता। एक ही बात है दोनों . दोषी तो मै भी था। माना सुरजीत सिंह को दंड मिल जाता, पर मुझे मुझे लगा मुझे प्रायश्चित्त करना चाहिए...मैंने अपने ही को तो बचाया है।''

आगे उनसे बोला नहीं गया। विनय बत्रा स्तब्ध थे। उनके भीतर भी सब कुछ गड्डमड्ड हो रहा था...वह मुस्लिम बाला और सरदार सुरजीत सिह की बेटी, सैंतीस वर्ष पूर्व के और आज के सरदार सुरजीत सिंह, सदीप खन्ना तथा निरतर बदलते समीकरण वाली वह बौराई भीड, जिसका लक्ष्य तब मुसलमान थे, आज सिख हैं और शायद कल. .और शायद कल .

फिर कल के बाद आने वाला कल यानी—निरंतर समीकरण बदलेंगे, लक्ष्य भी बदलेगे, लेकिन आदमी के भीतर सोया राक्षस इसी प्रकार निरंतर जागता रहेगा अपनी भूख मिटाने को, नए-नए मुखौटे लगाकर

संदीप खन्ना बोल रहे थे किसी गहरे अतल से जैसे, अपने से ही बातें कर रहे

हों, ''बत्रा! लडना हमें उस राक्षस से है, लेकिन हम हैं कि बेजान मुखौटों को नोंच रहे हैं।''

समुद्री तूफान मे फसा यात्री जैसे किनारे पर पहुच गया हो, बत्रा ने स्वस्ति की सास लेकर कहा, उतने ही धीमे पर दृढ़ स्वर में, ''कितनी प्रगति कर चुके है हम, कितने अद्भुत आविष्कार किए हमने, पर इस सत्य को जीने की राह आज तक नही खोज पाए। शायद, खोजना चाहा ही नही।''

आखिर क्यों

शकर हमेशा कुछ न कुछ सोचा करता है। उसके दोस्त उसे सपने देखने वाला कहते है, पर उसे परवाह नहीं। वह सोचता है। इस दुनिया की बात सोचता है, उस दुनिया की, तारो की, और कुछ नहीं तो घर मे भागते फिरते नेवले की बात ही ले बैठता है। पर इधर उसे सोचने के लिए नया मसाला मिल गया है। शहर में अभी-अभी दगा हुआ। कुछ हिंदू-मुसलमान घायल हुए, कुछ मर गए। आबादी मे कुछ ज्यादा फरक नही पडा, पर जहां देखो फौज। सबसे बड़ी मुसीबत यह कि सरेशाम से घर मे बंद होकर बैठो। शंकर बेताब हो उठा— आखिर यह कफर्यू क्यो लगा है? लोग लडते क्यों हैं? पेट मे छुरा क्यो भोंक देते है? आखिर क्यो .

बस, उसकी ट्रेन चल पडी। हिंदू-मुसलमान, ईश्वर के मानने वाले और न मानने वाले, धर्म की जरूरत और इनसानी जिंदगी के बुनियादी असूल— इन सभी मसलो पर उसने विचार कर डाला। करते-करते उसे लगा कि उसने उलझनें सुलझा ली है। तब उसने सोचा, यह दुनिया कितनी पागल है? मामूली-सी बात को लेकर इतना तूफान खडा कर दिया है। यह बच्चों की सीधी-सी बात उसके दिमाग मे नहीं आती। आखिर क्यो वह इतनी बेअकल है. ?

तभी उसकी पत्नी पार्वती अंदर आकर बोली, "दूध लीजिए।"

उसने लापरवाही से कहा, "मेज पर रख दो।"

"पी लीजिए न, ठंडा हो जाएगा।"

"अभी पीता हू जी। तुमने काम निपटा लिया?"

"जी, क्यों?"

"कुछ नही, ऐसे ही, जरा बातें करनी थी, मामूली-सी बात है।"

पार्वती हँस पडी, "आपकी मामूली-सी बात मै जानती हू। मेरे पास इतना वक्त नही है। आपका पुलोवर पूरा करना है।"

और कहकर पार्वती चली गई। शकर उतावला हो उठा। कोई होना चाहिए जिससे मै बाते कर सकू; जिसको मैं समझा सकू।

रात भीग चुकी थी। चारों तरफ सन्नाटा था। झींगुर की गूंजने वाली आवाज भी सुनाई नहीं पड रही थी। कभी-कभी कहीं दूर कुछ आवाज पैदा होती जैसे नदी का किनारा टूट कर पानी मे 'छप' से गिरता या स्टेशन पर इंजन शटिंग के लिए निकलता और एकाएक ऐसा जान पडता जैसे कोई भारी भीड उठी है पर आज शकर ने इधर

जरा भी ध्यान नही दिया. वह जानता है, आजकल उसके चारो तरफ की दुनिया बुरी तरह फंसी हुई है। उनके सामने जिंदगी और मौत का सवाल है। इसलिए वह एक-दूसरे को मार देना चाहते है। सवाल उठा—सब मारने पर तुले है तो जीता कौन रहेगा? जवाब मिला—जो ताकतवर है। तो जिंदगी की बुनियाद ताकत है इस विचार के आते ही उसका दिल दर्द से कराह उठा—ताकत सबसे बडी चीज है। ताकत की पूजा करना इनसान का पहला फर्ज है। ताकत से डर पैदा होता है और डर से शांति आह! शांति डर की बेटी है। तभी उसमें आलस और सुस्ती है। तभी उसमे मौत है .उसका दिमाग झनझनाया—पर शास्त्र कहते हैं. एकदम वह चौंक पडा—कहीं खटखट हुई। आखे और कान चौकन्ने हुए। कानों ने सुना, कोई धीरे-धीरे आ रहा है। दिमाग ने सोचा—कौन? पार्वती। नही तो आंखों ने देखा—ओह! यह तो एक आदमी है। मन खिल उठा। कितनी अच्छी बात है। मुझे आदमी की ही जरूरत थी। मुझे उससे बहुत बाते करनी हैं। और वह जल्दी से उठा। स्विच दबाया और मुडकर निहायत अदब से कहा, "आइए, आइए। मैं आपकी राह देख रहा था। आप खूब आए। मुझे आपसे बहुत बात करनी है। मसलन यह ताकत क्या है? लोग इसे क्यों चाहते है और . अरे! आप खडे है! आइए न, आगे आइए! यहां बैठिए, पलग है अहा! आप सोचते है कोई और आ सकता है। जी नहीं, पार्वती पुलोवर बुन रही है, मुन्ना सो रहा है और आप चाहे तो किवाड बद कर देता हूं।"

शकर मुडा और दरवाजे की चटकनी बद कर दी। अजनबी अभी तक बुत की तरह खिडकी के नीचे खडा था। न बोलता था न सुनता था, बस एकटक देखता था। उसके चेहरे पर अंधेरा था पर जिस्म तदुरुस्त और गठा हुआ था। उसने शलवार और कुरता पहना था। सिर नगा था। पैरों में पुरानी पेशावरी चप्पलें थीं। कपडे भी साफ नही थे। शकर अब आगे बढ़ा और पास आकर उसको बांह से पकड लिया, बोला, "आप कुछ सोच रहे हैं पर यकीन मानिए आप मुझसे ज्यादा नही सोच सकते। वैसे तो इनसान की आदत है कि वह 'मै हू।' के साथ साथ 'मै जानता हू!' इस सच्चाई की हिफाजत जी-जान से करता है पर आज मै इससे भी आगे बढ गया हू, मैंने एक और सच्चाई की खोज की है। उसी को लेकर मै किसी आदमी से विचार करना चाहता था। घर मे पार्वती है पर वह तो 'मै हू' से आगे बढती ही नहीं। बताइए, आप क्या मानते है?" कहते-कहते वह उसकी बांह पकड़े घसीटता हुआ-सा पलंग के पास ले आया और फिर दोनों हाथों से उसे बिठा दिया। रोशनी मे उसका चेहरा चमक उठा। देखा, वह कुछ लंबा है, रंग चिट्टा और नक्शा आदमी का है। हड्डिया चौडी और मजबूत, ओठ कुछ मोटे, आंखें कुछ डरावनी; एक अजीब शक्ल—डर हैरानी और खौफ से भरी हुई। शकर बोला, "हां तो आप क्या मानते हैं?"

वह चुप।

"आप नहीं बोलते? क्या गूगे हैं?"

वह कापा ग्सके। आवाज फूटा   ज ई ई

शकर मुसकराया   आप गूगे नहीं है बड़ा अच्छा हुआ तो कहिए आप क्या कहते हैं? और कहकर मेज की तरफ घूमा देखा, दूध रखा हुआ है। बोला, देखिए म भी कैसा बेवकूफ हू। आप आए और आपसे बहस करने को तैयार हो गया आपकी बात तक नही पूछी। पार्वती ठीक कहती है, मै कुछ नही सोचता। कैसी मजेदार बात है? हमेशा सोचता रहता हूं और पार्वती आराम से कह देती है— आप बिलकुल नही सोचते। उसका मतलब है, मैं समय पर समय की बात नहीं सोचता। शायद वह ठीक कहती है। आप पहली बार आए है। शास्त्र म आपको मेहमान कहा है और लिखा ह, मेहमान को सबसे पहले अर्घ्य देना चाहिए। खैर, आप दूध पीजिए और कुछ खाए तो पार्वती को पुकारू?"

"जी. "

"पुकारू? शायद खाना रखा हो।"

"जी नही।"

"आप तकल्लुफ करते हैं। आप आए है। आप मेरे साथ दूध पिएगे और हा। जाडे की रुत है। मेरे पास बादाम रखे है।"

और वह उठा। अलमारी खोली। दो प्लेट, दो प्याले और एक शीशी निकाल लाया। शीशी मे मुन्ना के लिए बादाम और काजू रखे हुए थे। उन्हीं को प्लेट मे डाला, प्याले में दूध भरा फिर छोटी मेज उठाकर पलग के पास रखी। सब सामान उस पर सजाया और बोला, "अब आइए! खाएगे। और बाते करेंगे।"

लेकिन इसी बीच, जब शकर की पीठ उसकी तरफ थी, अजनबी फुर्ती से उठा और खिडकी के पास आया, झुका और तेजी से हाथ मे छिपी हुई चीज बाहर फेकना चाहा। तभी शंकर मुडा। अजनबी कापा, वह चीज खन्न से वही खिडकी के फर्श पर गिर पडी। शंकर चौंका, "क्या गिरा?" इधर-उधर देखा फिर काम करने लगा। अजनबी को काटो तो खून नहीं। मुह सूख गया। थर-थर कापने लगा, पर शकर ने उसे नहीं देखा। काम पूरा कर चुका तो बोला, "अब आइए, खाएंगे और बाते करेंगे।" तभी उसकी नजर खिडकी पर पडी। कुछ चीज चमक रही थी। वह उठा, देखा, छुरा था— चमकता हुआ फौलादी छुरा। वह मुसकराया। उसने छुरा उटा लिया और बोला, "आज कैसा सुदर दिन है। बाइबिल में लिखा है," उसने कहा, "रोशनी हो और रोशनी हो गई। मैने भी चाहा— बातें करने के लिए आदमी चाहिए, तुम आ गए। बाते छुरे पर करनी थी, छुरा आ गया। सचमुच मैं खुदकिस्मत हू।" वह फिर अपनी जगह आ बैठा। छुरा उसने प्याली के पास मेज पर रख दिया और कहा, "आइए। हम अपना काम शुरू करें। बात यह है कि मुझे छुरे के बारे मे ही बातें करनी थी यानी इसके इस्तेमाल के बारे मे। जैसा कि आजकल होता है— आप जा रहे हैं, पीछे मे आकर कोई भी आपके पेट मे या कमर मे या गर्दन मे, गरज कि कही भी छुरा भोंक देता है।

आखिर क्यों ?''

अजनबी ऐसे जैसे पत्थर की मूरत हो न हिले न डुले, पलकें अडिग, दिल धकधक, दिमाग झनझन, जवाब के लिए जैसे ही शंकर ने आंखें उठाई तो अचरज से बोला, ''अरे! आप बैठे हैं! वाह! खाते क्यों नही? पहले खाइए, फिर जवाब दीजिए। सोचकर जवाब दीजिए। छुरा आपके सामने रखा है। इस पर ध्यान जमाइए। यह क्यो बनाया गया? इसकी क्या जरूरत है? कुछ लोग कहते हैं, इसकी बिलकुल जरूरत नही। लेकिन खैर, इस वक्त मानकर चलते हैं कि यह बना है तो इसकी जरूरत है। पर जरूरत क्या है? इसको कहा काम में लाना चाहिए? इस बात पर हमे जरा तफसील से सोचना है। इसी सवाल पर सोचते-सोचते मैं 'मै हू,' 'मै जानता हूं' से आगे बढ गया। यानी 'दूसरे हैं' 'दूसरे जानते हैं' और मै और दूसरे एक हैं। दोनो के मसले एक है, दोनों के हल एक हैं। फिर यह गड़बड घोटाला क्यों है? समझ मे नहीं आता—आखिर क्यों ?''

इतना बोल चुकने के बाद शाबाशी के लिए जब शकर ने अजनबी की तरफ देखा तो वह मुह में काजू डाले, ओंठों से प्याला लगाए, कांपता हुआ उसी की तरफ एकटक देख रहा था। शकर के देखते ही उसने प्याला मेज पर रख दिया और काजू को जल्दी-जल्दी चबा डाला। तब तक शकर ने तीन-चार काजू खाए और आधा प्याला दूध पी लिया। फिर बोला, ''अच्छा! एक सीधा-सा सवाल पूछता हूं।''

''जी।''

''तुम आदमी हो, यह तो मैं देख ही रहा हूं। गरीब लगते हो। मुश्किल से पेट भर पाते होगे। बीवी-बच्चे सभी है। होते ही है। उनका पेट न भरता होगा तो कलेजा फटता होगा। देखो न, मैं भी दफ्तर मे बाबू हू। खाने-पीने लायक कमाता हू पर सच मानो, कभी-कभी वह भी नहीं पुरता। हा, जरा मयार मे फरक जरूर है। तुम मुरदों का खाना खाते हो। मैं भूखों का खाता हू। पर आदमियों का न तुम खाते हो, न मैं।''

अजनबी की आवाज पहली बार ठीक-ठीक फूटी, बोला, ''सच कहता हू, बाबूजी, आधी जून भी पेट नही भर पाता।''

''जानता हू। तुम्हारी सूरत कह रही है। बच्चे कितने है?''

''चार।''

''लीजिए आप हैं, बीवी है, चार बच्चे और . ''

''जी, अम्मा हैं।''

''और करते क्या हो?''

''एक दुकान पर नौकर हूं। चालीस रुपये मिलते हैं।''

''अब सोचो। सात आदमी और चालीस रुपये। फिर इतना बडा शहर—जिसमे एक से एक बढकर आलीशान इमारते, सैकडों बैंक, मिलें, फैक्ट्रियां और चमचमाते बाजार हैं। दूर क्यों जाते हो तुम्हारा मालिक कितना कमाता है?''

"जी, उनकी किराने की बडी दुकान है। थोकफरोश है। खुदा झूठ न बुलाए पाच-छै हजार महावार तो कमाते ही हैं।"

"तो कभी सोचा, ऐसा क्यो है? क्यो थोडे-से लोग दूसरों की मेहनत पर ऐश करते है? क्यों इन्होंने इतना धन जमा किया है? क्यो पसीना बहाकर भी तुम भूखे मरते हो? आखिर क्यो, कभी सोचा?"

अजनबी कुछ जवाब न दे सका। अब वह कुछ बेतकल्लुफी से बादाम खाने की कोशिश कर रहा था। शंकर ने फिर कहा, "उनके बच्चे खाकर खराब करने मे फख्र समझते है। खुदा उनको खराब करने को भी देता है। उनकी औरते ऐशोइशरत की पुतलिया बनकर गरीब दिलों मे आग लगाती फिरती है, खुदा उनके लिए आग लगाने के सामान मोहय्या करता है, पर तुम्हारे बच्चे मेहनत करके जब पेट भरने को रोटी मागते हैं तो उन्हें नहीं मिलती। तुम्हारी मा, तुम्हारी बहन, तुम्हारी बीवी अपनी इज्जत ढकने के लिए कपड़ा मागती है वह भी खुदा उन्हें नही दे सकता! कभी सोचा मेरे दोस्त, ऐसा क्यो है?"

अजनबी का हाथ रुक गया था। उसका दिल भरा आ रहा था। उसकी खूखार आखों मे रोशनी चमकने लगी थी और छुरा उसी तरह मेज पर रखा हुआ था। अदर से पार्वती दो बार शंकर को सोने के लिए बुलाने आई। उसने देखा, दरवाजा बंद है और सुना, वह किसी के साथ बडी तेजी से बातें कर रहे है। वह लौट गई। फिर आई दरवाजा उसी तरह बद था। शकर अभी-अभी चुप हुआ था। उसने दूसरी आवाज सुननी चाही। खड़ी रही, पर आवाज आई तो शकर की ही थी। अगर्चे वह गुस्से मे थी तो भी वह मुसकरा पडी और फुसफुसाई— अपने सामने वह कभी किसी को नही बोलने देते।

और शंकर कह रहा था, "मेरे दोस्त! सोचते सब हे।" तुम, हम, वह— सब। पर अफसोस, गलत सोचते हैं। क्या सोचेगे—तुम पूरब की तरफ मुह करके पूजा क्यो करते हो? तुम बुत क्यो पूजते हो? तुम शादी ऐसे क्यों करते हो? गरज कि झटका हलाल, आवागमन, खुदा, ईश्वर, स्वर्ग-नरक न जाने क्या-क्या मसले है? सोचते है और लडते है। फैसला तो इन बातों का हो नही सकता। किसने देखा है ईश्वर को या खुदा को? कौन जानता है, मरकर हम कहां जाते है? क्या फिर जनम लेते है या नही? जिस चीज का कोई हाजिर सबूत नहीं उसके बारे मे फैसला कैसा? और जिसके बारे मे फैसला नहीं हो सकता उसके बारे मे लड़ाई कैसी? यह तो ऐसे मसले है कि जिनको दिलचस्पी है, खोज करते रहें। बाकी सब लोग आजादी से किसी भी तरफ मुह करके पूजा करें। बाकी मस्जिद के आगे बाजा और गाय की कुर्बानी ऐसी बाते! जड तो यह है नही, बहाने है। दिन-भर ट्राम धडधडाती है, हवाई जहाज धें-धें करते हे मोटर पों- पों पुकारती रहती है पर कभी-कदाक बाजा नही बज सकता? और जिद करने वाले भी अजीब दिमाग वाले है। मिलटरी के लिए लाखो गाये कटती हैं पर एक गाय के लिए खून बहा देगे। यह कोई जीवन के असली मसले थोडे ही हैं। असली

मसला है 'मै हू' इसका हल है 'दूसरे भी है, दूसरे के होने मे ही मेरा होना है।' म जानता हूं, दूसरे जानते है। ज्ञान की कोई हद नही, यह बाद की बाते हैं। हम पहले जो असली बात है, उसको भूल गए है। दूसरी, जो नकली है, उसके लिए पागल हुए फिरते है। एक-दूसरे को खा जाना चाहते है। अच्छा बताओ, सब मुसलमान हो जाए तो क्या सवाल खत्म हो जाएगा? दुनिया मे इतने मुसलमानी राज हुए और हैं भी। क्या वह सब सुखी थे? क्या उन्होने 'मै हूं'—'दूसरे है'—'दूसरो के होने में मेरा होना है'—इस सच्चाई को पहचाना था? या हिंदुओं या दया की मूर्ति ईसा के भक्तों ने, या अकल के पुतले कन्फ्यूशियस के चेलो ने या तथागत बुद्ध के पैरवों ने बुनियादी सच्चाई का हमेशा पालन किया और करते हैं? मेरे प्यारे दोस्त। इस सच्चाई को पहचानने के लिए किसी के पास जाना जरूरी हो है, यह बात नही है। यह इनसानी जिंदगी का बुनियादी मसला है और इसके लिए इनसान बने रहना जरूरी है। सोचना चाहिए कि दूसरो के होने में मेरा होना कैसे है? अनाज पैदा करके भी किसान भूखा क्यो रहता है? महल बनाकर भी मेमार झोंपडो में सिर क्यों छिपाता है? कपडा बुनकर भी जुलाहा तन क्यों नही ढक पाता? इसके जवाब में अकसर कहा जाता है—जो पैदा करने वाले हैं, वह अपनी पैदा की हुई चीज का इस्तेमाल नहीं करते, दरख्तों पर कितने फल आते हैं पर वह उन्हें कभी नही खाते। सुनने मे कितनी प्यारी पर असल में कितनी गलत दलील है। फल दरख्त की खुराक नही है। जो उसकी खुराक है वह उसे खुद-ब-खुद मिलती है। कुदरत उसे गैस देती है, इनसान खाद देता है, पानी भी देता है। न दे तो फल न मिले। लेने का देना है। दूसरी तरफ, अनाज पैदा करने वाले किसान की जिंदगी वही अनाज है जो वह पैदा करता है। वही उससे छीन लिया जाता है और उनको दे दिया जाता है जिन्होने उसके लिए कोई मेहनत नही की। आखिर क्यों? आखिर यह बात तुम्हारी समझ मे क्यों नहीं आती? आखिर क्यों तुम जेब मे छुरे डाले उन आदमियो को मारने की टोह में रहते हो जो कमोबेश तुम्हारी ही तरह भूखे नंगे और बेघर हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि वह शायद तुम्हारी तरह पूजा नही करते और मुझे तो इसमे भी शक है कि तुम या वह कभी सही मानी में पूजा करते भी हो ." कहते-कहते शंकर अपनी जगह से उठा। फिर छुरा उठाया और घुमाने लगा। छुरा घूमता और बिजली की रोशनी मे चमक उठता। अजनबी अचरज से उसे देखता रहा। शंकर यकायक रुका और उसके सामने आकर बोला, "यह छुरा आपका है?"

अजनबी कांपा, "मेरा ."

"जी, यह छुरा आपका है?"

"जी, हा।"

"तो फिर लीजिए और मुझे मार दीजिए। इसीलिए तो आप घर से निकले थे।" एकदम जैसे बिजली कौंधी। अजनबी कांप-कांप उठा। अंदर कोई तेजी से चीखा और फिर गिर पडा, शकर जैसे दुनिया में लौटा और बेसाख्ता बोला, "पार्वती " उसने

जल्दी से दरवाजा खोला देखा सामने फर्श पर पार्वती बेसुध सी पड़ी है उसने ममता से पुकारा पार्वती पार्वती

अजनबी पीछे-पीछे उठ आया था। उसने कहा, जल्दी से पानी ले आइए। शकर दौड़ा, पानी उडेला कि जागकर मुन्ना रो उठा। अजनबी ने बडी बेतकल्लुफी से बच्चे को उठा लिया और कहा, "मुह पर पानी के छींटे दीजिए, डर गई हैं।"

शंकर ने वैसा ही किया—एक लम्हा, दो तीन लम्हे, पार्वती कुनमुनाई। शकर ने पुकारा, "पार्वती "

पार्वती बोली, "जी।"

"आंखें खोलो।"

"जी।"

"कैसी तबियत है?"

"अच्छी है।" कह कर पार्वती ने आखे खोल दी। गौर से शंकर को देखा, फिर देखा—कोई उसके बच्चे को लिए जल्दी-जल्दी सहन मे घूम रहा है। पुचकारता है, चुमकारता है पर बच्चा बार-बार सुबक उठता है। अचरज से बोली, "कौन है?"

"एक दोस्त।"

"दोस्त।"

"हां दोस्त है। न होता तो क्या इस तरह घूमता!" और कहकर शकर हँस पडा, "डरपोक कहीं की। कान लगाकर बातें सुन रही थी। छुरा का नाम सुनकर जान निकल गई। उठो, खुद तो क्या जीओगी, दूसरों का जीना दूभर कर देती हो। अरे, मेरे लिए दर्द था तो जान पर खेल जातीं..."

पार्वती अब पूरी तरह ठीक हो गई थी। लजा गई। बोली, "मैं तो समझी थी, सचमुच छुरेबाजी होने वाली है। तुम बडे वैसे हो, डरा देते हो। जाओ, उनसे बच्चे को ले आओ। मै उनके सोने के लिए बिस्तर लाती हूं।"

पार्वती उठी और अदर चली गई। शंकर उठा और अजनबी के पास आकर बोला, "माफ करना, मैं तुम्हारा नाम पूछना तो भूल ही गया था।"

"मुझे रफीक कहते हैं।"

"तब रफीक साहब, बच्चा मुझे दीजिए। बिस्तर बैठक में ला रहा हू।"

रफीक चौंका, "पर मै जाऊंगा।"

"जाएंगे, कर्फ्यू में? क्या कहते हैं?"

रफीक ने सिर झुका लिया। भीतर से आवाज हुई। शंकर ने जाकर बिस्तर ले लिया। पार्वती ने पूछा, "खाना तो नही खाएगे?"

शकर ने उसी बात को जोर से दोहराया, "अरे भाई, पूछती हैं, खाना तो नही खाएंगे।"

कांपता हुआ जवाब मिला, "नहीं, नहीं।"

"पूछो, दूध।"

शंकर ने पूछा, "दूध?"

रफीक ने जवाब दिया, "जी, पिया तो।"

शंकर बोला, "अरे हां! जो दूध तुम दे आई थीं वह हम आधा-आधा बांटकर पी गए। तुम मुझे हमेशा पागल कहा करती हो लेकिन असल में मैं हूं जरा कम।"

पार्वती हँस पडी, कहा, "जब खुद नही होते तो दूसरो को पागल बनाते हो। बात एक ही है।"

शंकर भी ठट्ठा मारकर हँसा और हँसता-हँसता बैठक में आया। देखा—रफीक गुमसुम एक कुरसी पर बैठा हुआ ऊपर की तरफ ताक रहा है। उसकी आंखें आंसुओं से भरी है। अनदेखा करके शंकर ने कहा, "रफीक भाई, यह रहा तुम्हारा बिस्तर। बातें तुम से खूब हुई। अब सोओ, सवेरे मुलाकात होगी। तब तक बिदा।" शंकर ने हाथ उठाया और चला गया।

लेकिन सवेरे जब कमरे में आया तो देखा—रफीक नहीं है। सब सामान पहले की तरह है। बिस्तरा करीने से लिपटा है। उसके ऊपर एक परचा पिन किया हुआ है। जल्दी से निकालकर पढ़ा, रफीक ने लिखा था :

"समझ मे नहीं आता, यह सब क्या हुआ। मैंने ख्वाब देखा था या इस दुनिया से कहीं दूर भटक गया था। रात-भर सोचता रहा पर किसी नतीजे पर नहीं पहुंच सका। बहरहाल, आपका सामना करने की हिम्मत इस वक्त मुझ मे नहीं है। यह मेरी कमजोरी है पर जो है, वह है। कभी उस पर फतह पा सका तो एक दिन आप लोगो का नियाज हासिल करने आऊंगा। तब तक के लिए अलविदा! अपनी अच्छी बीवी को मेरा सलाम देना। अपने प्यारे बच्चे को प्यार। और यह छुरा आपके लिए था, आप ही रखिए। यकीन रखिए, एक दिन आऊंगा "

अधूरी कहानी

नारो की आवाज धीरे-धीरे धीमी, फिर बहुत धीमी पड गई। प्लेटफार्म की भीड़ छटने लगी और सब लोग अपनी-अपनी सीट पर जा बैठे। इसी बीच में एक मुस्लिम युवक एक हिंदू सज्जन से उलझ पडा था। युवक कह रहा था, ''हम पाकिस्तान नहीं चाहते लेकिन कांग्रेस ने मजबूर कर दिया है। हम अब उसे लेकर छोडेगे।''

हिंदू साहब ने तलखी से जवाब दिया, ''पाकिस्तान! जो पाकिस्तान आप छ सो बरस की हुकूमत मे न बना सके उसे अब गुलाम रहकर बनाना चाहते हैं। एकदम नामुमकिन।''

एक भारी बदन के मुसलमान, जो सामने की बर्थ पर बैठे हुए थे, बीच में बोल उठे, ''छः सौ नही साहब! हमने नौ सौ बरस हुकूमत की है।''

''जी हा, नो सौ वर्ष।''

''और उन नौ सौ बरस मे हिंदू बराबर हमसे नफरत करते रहे।''

''जी, क्या कहा आपने?'' हिंदू साहब बोले, ''नफरत करते रहे? जो जुल्म करता है उससे नफरत ही की जाती है, प्यार नही।''

उन मुसलमान भाई ने बडे अदब से कहा, ''जुल्म क्या हे? इस पर सबकी अलग-अलग राय है, पर मेरे दोस्त! आप लोगों ने हमें सदा दुरदुराया। हमारी छाया से भी आपको परहेज था। माना हम जालिम थे। पर जालिम के पास भी दिल होता है। वह कभी-न-कभी पिघल सकता है। लेकिन परहेज सदा मोहब्बत की जड़ खोदता है। वह नफरत करना सिखाता है। आपने हमसे नफरत की और चाहा कि हम आपसे प्यार करे। यह कैसे हो सकता था? माफ करना, मैं आप लोगो की कदर करता हूं। मै मेल-जोल का पूरा हामी हूं, पर आप बुरा न मानें तो एक बात पूछना चाहूगा।''

हिंदू भाई की तेजी और तलखी अब कुछ घबराहट मे बदलती जा रही थी और दूसरे मुसलमान साहब अजीब अदा से मुसकराने लगे थे। तो भी उन्होने कहा, ''जी! जरूर पूछिए।''

वह मुसलमान भाई निहायत शराफत से बोले, ''अछूत हिंदू हैं, पर आप उन्हे ताकत सौप दीजिए, तब, मैं पूछता हूं, वह आपसे प्यार करेंगे या नफरत?''

हिंदू भाई सिटपिटाए। उन्हें एकाएक जवाब न सूझा। मुसलमान साहब उसी सजीदगी से कहते रहे, ''मै जानता हूं, आज आप उनमे से कुछ को अपने बराबर मानने लगे हैं। मेरे ऐसे हिंदू दोस्त हैं जो इनसान-इनसान के बीच के भेद को दुनिया का

सबसे बड़ा पाप समझते हैं। पर मेरे दोस्त! भेद की इस लकीर को बराबर गहरी करने मे जाने या अनजाने, जो लोग मदद करते आए है उनके पापो का फल तो आपको भुगतना ही पडेगा। आप यह न समझिए, मै आपकी कौम और मजहब पर कोई हमला कर रहा हूं। मै आपके धर्म को समझता हू। पर दूसरो में कमी है, यह कहकर कोई अपनी कमी को सही साबित करने की कोशिश करे, तो वह महज अपनी जिद और बेवकूफी जाहिर करेगा। जो असलियत है उसका सामना करना ही इनसान की इनसानियत है। मैं आपको एक छोटी-सी कहानी सुनाता हूं। मुझे वह मेरी वाल्दा ने सुनाई थी।''

इतना कहकर वह पल-भर रुके। डिब्बे में सन्नाटा छा गया था। पता नही लगा, गाडी कब चल पडी और कब 'शडाक-शू छडाक-छू' की गहरी आवाज करती हुई अगले स्टेशन पर जा खडी हुई। सूरज डूबने लगा था। एक भाई ने स्विच दबा दिया। बिजली की हलकी रोशनी से डिब्बा चमक उठा।

तब उन भारी बदन के मुसलमान भाई ने कहना शुरू किया, ''मेरे दोस्तो! बात आज से तीस बरस पहले की है। हमारे सूबे मे एक छोटा-सा कस्बा है। उसमे हिंदू-मुसलमान सभी रहते हैं। वह सदा आपस मे मोहब्बत करते थे। एक-दूसरे के दुःख-सुख के साथी थे, लडते भी थे, पर वह लडना प्यार की तडप को और भी गहरा कर देता था। हिदुओ के त्यौहारो पर मुसलमान उन्हें बधाई देते थे। मौसम की पैदावार का लेना-देना चलता था। होली जलती तो जौ की बाले पहुंचाने का जिम्मा मुसलमानो पर था। ईद के दिन हिंदू अपनी गाय-भैसो का सारा दूध मुसलमानो मे बाट देते थे। सवेरे ही दूध दुहकर वह अपने-अपने दरवाजों पर खड़े हो जाते और थोडा-थोडा दूध सब मुसलमानो को देते। उस दिन उनके हारों (अहारों या अंगीठियों) से धुआं नही निकलता था, लेकिन उनके दिल की दुनिया खिल उठती थी। मै नही जानता, यह रिवाज कब और कैसे चला। इसकी बुनियाद जुल्म पर भी हो सकती है। पर उन दिनो यह मोहब्बत, इनसानियत और हमदर्दी का सबूत बन गया था। जो हो, उस साल भी ईद आई। मुसलमानों के घर जन्नत बने। उनके बच्चे फरिश्तों की तरह खिल उठे। लेकिन दुनिया आखिर दुनिया है। यहां जिदगी के बाद में मौत होती है। रज हमेशा खुशी का दामन पकडे रहता है। इसीलिए जब सब लोग हँस रहे थे, एक घर में बालक दुखी मन चुपचाप अपनी अम्मी की चारपाई के पास बैठा था। उसकी अम्मी फातिमा बीमार थी। उसकी सास फूल रही थी। वह बेचैन हाथ-पाव फेंक रही थी। लेकिन यह बेचैनी बुखार की इतनी नहीं थी जितनी खाविंद की याद की। पार साल अहमद का बाप जिदा था तो घर में फुलवाडी खिली थी। वह अचानक एक दिन खुदा को प्यारा हुआ, घर वीराना हो गया। आज ईद आई है, लेकिन..

एकाएक फातिमा को न जाने क्या सूझा, वह उठकर बैठ गई। उसने हांफते-हाफते कहा, ''मेरे बच्चे! कितना दिन चढ गया? तू दूध लेने नही गया।''

अहमद ने सिर हिलाकर कहा, नहीं अम्मी।

फातिमा के दिल पर चोट लगी। उसकी आंखे भर आई। वह अपने को कोसने लगी—"मैं कैसी कमीनी हू। साल का त्यौहार आया है और मेरा बच्चा इस तरह मोहताज, बेबस बैठा है। नही, नही, आज ईद मनेगी जरूर मनेगी।

और उसने कहा, "जा अहमद! तू जल्दी जाकर दूध ले आ। मैं तब तक तेरे कपडे निकालती हू। जा, जल्दी कर मेरे बच्चे!"

बच्चे ने एक बार अपनी अम्मी को देखा और फिर चुपचाप बाल्टी उठाकर बाहर चला गया। लेकिन बहुत देर हो चुकी थी। सब लोग दूध बाटकर अपने-अपने काम मे लग गए थे। रास्ते में उसके साथी हँसते-हँसते लौट रहे थे और वे बाल्टी दूध से भरे चले आ रहे थे। उन्होंने उसे देखा और अचरज से कहा, "अरे! तुमने बहुत देर कर दी। तुम अब तक कहां सो रहे थे? अब तो सब दूध बंट चुका है, मिया, अब जाकर क्या करोगे?"

अहमद सुनता और उसका दिल बैठने लगता। लेकिन उनकी बात ठीक थी। वह जिस दरवाजे पर जाता, वहा फर्श पर पडे दूध के छीटों के अलावा कुछ नही मिलता। तब सचमुच उसका दिल भर आया। आखे नम हो उठी। लेकिन फिर भी उम्मीद की डोर पकडे वह आगे बढा चला गया कि अचानक एक दरवाजे पर किसी ने उसका नाम लेकर पुकारा, "अहमद! अहमद!!"

अहमद ने रुककर देखा—पुकारने वाला उसके स्कूल का साथी दिलीप है। वह उसी की जमात में पढता है। उसकी आवाज सुनकर अहमद ठिठक गया। दिलीप दौडकर आया, "तू अब तक कहां था? तेरी बाल्टी खाली है।"

अहमद की आवाज भर्रा रही थी। उसने कहा, "अम्मी बीमार हैं, मुझे देर हो गई।"

"तो।"

"दूध बिलकुल नहीं है?"

"ना।"

फिर कई पल तक वे दोनो उसी दरवाजे पर, जहां आध घंटा पहले दूध लेने वालों की आवाज गूज रही थी, चुपचाप खडे रहे कि अचानक दिलीप को कुछ सूझा। वह अंदर दौडा गया। जाते-जाते उसने कहा, "तू यहीं ठहर, मैं अभी आया।"

अंदर वह सीधा अपनी मां के पास पहुंचा और धीरे से बोला, "भाभी! कुछ दूध और है क्या?"

उसकी मा बोली, "हा, है। तेरे और मुन्ने के लिए है। तू पिएगा?"

"नही।"

अचरज से मां बोली, "तो?"

दिलीप नहीं बोला।

"अर, बात क्या हें? बता तो।"

"अहमद को दूध नही मिला।"

"कौन अहमद?"

"वह मेरे माथ पढता है। उसकी मा बीमार हे इसलिए उसे देर हो गई।"

कहते-कहते दिलीप ने अपनी मा को ऐसे देखा जैसे उसने कोई कसूर किया हो। पर मा का दिल खुशी से भर आया। वह मुसकराई। उसने दूध का भरा लोटा उठाया और कहा, "चल बता, कहां है तेरा दोस्त।"

दिलीप ने तब खुशी की छलाग लगाई। मा-बेटे दरवाजे पर आए। अहमद उसी तरह खड़ा था। दिलीप ने हँसते-हँसते कहा, "अहमद! बाल्टी ला। जल्दी कर।"

दिलीप के लोटे का दूध अहमद की बाल्टी में क्या आया उसकी मोहब्बत अहमद के दिल मे समा गई।

मां ने पूछा, "तेरी मां बीमार है?"

"जी।"

"तो सेवैया कौन बनाएगा?"

"वही बनाएगी।"

"अच्छा, हमें भी खिलाएगा न?"

अहमद ने सिर हिलाकर कहा, "जरूर।"

मां हँस पडी। बोली, "भगवान् तेरी मा को जल्दी अच्छा करेगा। जा, घर जा। जल्दी आता तो और भी दूध मिलता।"

और फिर दिलीप का हाथ पकडकर उसकी मां अंदर चली गई। उसका दिल बार-बार यही कह रहा था, "परमात्मा मेरे बच्चे का दिल सदा इसी तरह खुला रखे।"

उधर अहमद फूला-फूला घर आया। दरवाजे मे घुसते ही उसने पुकारा, "अम्मी! मैं दूध ले आया।"

फातिमा खिल उठी, "ले आया? बहुत अच्छा बेटा! कहां से लाया?"

अहमद खुशी से बोला, "अम्मी! बहुत देर हो गई थी। सब दूध बंट चुका था, लेकिन दिलीप ने अपनी मा से जाकर कहा और फिर वह मुझे इतना दूध दे गई।"

फिर एकदम बोला, "अम्मी! दूध थोडा तो नहीं है?"

"बहुत है, मेरे बेटे! इतना ही बहुत है।"

"हां अम्मी! सब दूध बंट चुका था। यह उसके अपने पीने का दूध था।"

"अपने?"

"हा, अपने और छोटे भाई के। जरा-सा रखकर सब उसने मुझे दे दिया।"

फातिमा का दिल भर आया। गद्गद होकर बोली, "खुदा उसका भला करे। उसने गरीब की मदद की है।"

और फिर उन्होने खुशी-खुशी ईद मनाने की तैयारी की। फातिमा का बुखार

हलका हो चला। उसने अहमद को नहलाया और कपडे बदले। किसी तरह वह उसके लिए कुरता-पाजामा तो नया बना सकी थी, पर जूता पुराना ही था। उसे तेल मे चुपडकर चमका दिया और टोपी पर नई बेल टाक दी। अहमद खुश होकर बाहर साथियों मे चला गया। नमाज पढने जाना था और उसके बाद मेला भी देखना था। सबकी जेबो मे पैसे खनखना रहे थे। सबकी आखे चमक उठी थीं। सबके मन उछल-उछलकर मिठाई और खिलौनो की दुकानों पर जा पहुचे थे। अगरचे अहमद के पास बहुत कम पैसे थे, पर क्या हुआ, उसका दिल तो कम खुश नहीं था। कम होता क्यो, अम्मी ने उसे बताया था कि अब्बा दिसावर गए है बहुत रुपये लेने। अगली ईद पर लौटेगे जैसे नियाज के अब्बा लौटे थे। यह क्या कम भरोसा था। इसी भरोसे को लेकर वह ईदगाह पहुचा। वहा उसने हजारो इनसानों को एक साथ नमाज पढते देखा। उसके बाद उसने मेले की सैर की। चाट, मिठाई, फल, खिलौने सभी तरह की दुकानों की उसने पडताल की। उसने साथियो को झूलते देखा, पर वह तो सब कुछ अगले साल के लिए छोड चुका था। इसीलिए जो कुछ पैसे अम्मी ने उसे दिए थे उन्हे ठिकाने लगाकर वह घर लौट आया। देखा सेवैया बन चुकी हैं। गरम-गरम, लंबी-लंबी सेवैया उसे बडी खूबसूरत लगी। बीच-बीच में गोले की फाक पडी थी। शक्कर की वजह से दूध कुछ पीला हो गया था। उसका दिल बाग-बाग हो उठा। फातिमा ने प्यार से उसे देखा और कहा, ''मेरे बच्चे। जा कटोरा ले आ और खाला के घर सेवैया दे आ। फिर मामू के घर जाना और फिर ''

अहमद बोला, ''सबके घर देते है?''

''हां बेटा। वे भी तो हमे भेजेगे।''

''अच्छा अम्मी, मै अभी दे आता हू।''

और फातिमा ने दोनो कटोरो में सेवैया भरी और उन पर रूमाल ढक दिया कि कहीं चील झपट्टा न मार ले। अहमद पहले एक कटोरा उठाकर चला, लेकिन जैसे ही वह दरवाजे से बाहर हुआ उसे एक बात याद आ गई सेवैया सबसे पहले दिलीप के घर देनी चाहिए। उसने मुझे दूध दिया था, अपने हिस्से का दूध।

''बस, उसने अपना रास्ता पलटा। खाला के घर न जाकर वह दिलीप के घर की ओर चला। सोचने लगा, अम्मी सुनेगी तो बडी खुश होगी। बेचारी बीमार है। इसलिए दिलीप का नाम भूल गई। नहीं तो । यही सोचता हुआ वह खुशी-खुशी दिलीप के घर पहुचा। दरवाजा बद था। कुछ देर असमजस में सकुचा हुआ खडा रहा, फिर हिम्मत करके आवाज दी, ''दिलीप।''

कोई नहीं बोला।

फिर पुकारा, ''दिलीप।''

इस बार किसी ने जवाब दिया, ''कौन है?''

और साथ ही कहने वाला बाहर आ गया। वह दिलीप का बडा भाई था। उसने

अचरज से अहमद को देखा और पूछा, "क्या चाहते हो?"

अहमद झिझका, फिर सभलकर बोला, "दिलीप है?"

"नहीं।"

"उसकी मा?"

"मा? मा से तुम्हारा क्या मतलब?"

अहमद ने कहा, "मेरा नाम अहमद है। मैं दिलीप के साथ पढ़ता हूं। सवेरे उसने मुझे अपने हिस्से का दूध दिया था।"

दिलीप का भाई मुसकराया। तब तक दिलीप की मा और चाची भी वहा आ गई थी। भाई ने कहा, "तो फिर?"

"जी सेवैया लाया हू। इन्होंने (मां को बताकर) कहा था कि "

अहमद अपना कहना पूरा करे कि दिलीप के भाई बड़े जोर से हँस पड़े, कहा, "भोले बच्चे! जाओ, अपने घर लौट जाओ।"

चाची बोली, "हम क्या तुम्हारी सेवैया खा सकते हे? हमें क्या अपना ईमान बिगाड़ना है।"

मा ने निहायत नरमी से कहा "बेटे! मैंने तुमसे मजाक किया था। हम तुम्हारे घर की सेवैया नही खा सकते।"

अहमद एकदम सकपका गया। उसके छोटे-से दिल पर चोट लगी। फिर भी उसने हिम्मत बांधकर कहा, "क्यों नहीं खा सकते? हमने भी तो आपका दूध लिया था।"

अब भाई ने उसे समझाया, "बच्चे! तुम बहुत अच्छे हो। परमात्मा तुम्हें खुश रखे। लेकिन हम हिंदू हैं, और हिंदू लोग तुम्हारे हाथ का छुआ खाना पाप समझते है।"

अहमद पाप-पुण्य नही समझता था। उसे हिंदू-मुसलमान के इतने गहरे भेद का अभी तक पता न था। वह सिर्फ दिलीप और उसकी मा की मोहब्बत की बात सोच रहा था। लेकिन यह बात सुनकर उसका दिमाग चकराने लगा। वह खिसिया गया, और जैसे ही घर जाने को मुड़ा उसका हाथ कांपा। सेवैयों से भरा कटोरा जोर की आवाज करता हुआ वहीं उसी चौकी पर गिर पड़ा, जिस पर सवेरे-सवेरे दिलीप और दिलीप की मां ने दूध के रूप में अपनी मोहब्बत अहमद के दिल मे उडेल दी थी। सेवैया चारो तरफ फैल गई और अहमद की मोहब्बत पैरो से रौंदे जाने के लिए वही पड़ी रह गई

इतनी-सी बात

केशव

साझ के साये लंबे होने लगे थे। बस के ड्राइवर ने अंदर की बत्तिया जला दी थीं। उस रोशनी मे कुछ यात्री कुनमुनाए, कुछ पहले की तरह ऊघते रहे। कुछ ने अपने साथी यात्रियों पर दृष्टि डाली और फिर पहले की तरह आखें मीच ली। कुछ ही क्षण बाद बस में फिर स्तब्धता छा गई। बस, आते-जाते कुछ इक्का-दुक्का वाहनो की तेज आवाज उस सन्नाटे को चीर रही थी। उसके बाद फिर वही अपनी बस चलने की आवाज, वही झटकोले

कुछ ही क्षणो में हम एक सुनसान स्थान पर आ पहुचे। और तभी वह अघटित घट गया। एक कडकती हुई कर्कश आवाज गूंजी—"ड्राइवर, बस रोक दो।"

इस स्वर की कर्कशता से सभी यात्री हकबका गए। दृष्टि उठी, उन्हीं के साथी यात्रियों में से सात व्यक्ति बस के चारों कोनो पर बंदूकें, पिस्तौले और चाकू ताने खडे है। उनकी दृष्टि की क्रूरता उनके पूरे वजूद को आवृत किए थी। तभी दूसरा व्यक्ति चिल्लाया, "ड्राइवर। अगर तुम इसी वक्त नहीं रुके तो मैं तुम्हे चाकुओं से गोद दूंगा।"

बस का स्वर किंच-किंच करता एकदम बंद हो गया। कर्कश स्वर फिर गूजा, "सब सवारियां अपनी-अपनी जगह बैठी रहे और जो कुछ भी पास है, निकाल ले।"

और सबसे पहले उसने डॉ विनीता वर्मा से उसका पर्स झपट लिया। मेरे पास 500 रुपये थे, वे भी छीन लिए। कुछ ही क्षणों में उन्होने किसी के पास कुछ नही छोडा। यात्री सब स्तब्ध जैसे किसी ने उन पर सम्मोहन कर दिया हो।

मुश्किल से तीस मिनट लगे होगे। डाकुओं ने सब कीमती सामान एक गठरी में बाधा और नीचे उतर गए। जाते-जाते उनके सरदार ने आदेश दिया, "अब सब लोग आधा घंटे तक इसी तरह बैठे रहना।" यात्री तो सब जड हो चुके हो जैसे। मंत्रकीलित-से शून्य दृष्टि से देखते रहे। किसी ने भी उन्हें चुनौती नही दी। चुनौती का स्पष्ट अर्थ था मृत्यु .

और जीते-जी कोई भी आदमी मरना नही चाहता। हम सब इसी तरह खाली नजरों से उन्हे जाते देखते बैठे रहे कि तभी सहसा उनमे से एक डाकू का स्वर शून्य को कंपाता हुआ हमारे अंतर को चीर गया, "सरदार। इस खूबसूरत औरत के हाथ मे कीमती घडी है।"

सरदार की आवाज कडकी, ''घड़ी खोलोगे तो देर लगेगी। उसी को उठा लाओ।''

पहले डाकू ने तुरत उस महिला के दोनो हाथ पकडे और नीचे उतारने के लिए खीचने लगा, तभी वह भयानक सन्नाटा एकाएक भंग हो गया। डॉ. विनीता वर्मा ने भयातुर, कंपित क्षण-भर तो उस डाकू का प्रतिरोध करने का प्रयत्न किया फिर बुत बने सहयात्रियो की ओर याचना-भरी दृष्टि से देखा और करुण स्वर में बोल उठी, ''मुझे बचाओ .मुझे बचाओ .'' और वह रो पड़ी।

उसके बच्चे का तो और भी बुरा हाल था। डाकू अट्टहास कर रहा था। मा-बेटा जोर-जोर से रोते हुए उसी तरह गुहार कर रहे थे और हम सब डकैतो की तनी पिस्तौलों के डर से प्रस्तर-प्रतिमा की तरह मौन थे। मै जानता हूं, हम सभी के भीतर तूफान थपेड़े मार रहा था। और मैं अनुभव कर रहा था जैसे किसी ने हम सबको अपने-अपने बैठने के स्थान पर कील दिया हो।

उसी क्षण उस आतंक और आर्तनाद में एक बार फिर आकाशवाणी की तरह एक चुनौती-भरा स्वर गूजा, ''खबरदार! जो इस बहन को किसी ने छुआ भी। पीछे हट जाओ वरना...''

और इस दैवी स्वर के साथ ही मेरे पीछे की सीट पर बैठा एक तीस-बत्तीय वर्षीय युवक विद्युत की-सी गति से उस डाकू पर टूट पड़ा। और फिर गुत्थमगुत्था हो गए दोनों। तभी नीचे से सरदार की आवाज कडकी, ''गोली मार दो साले को।''

वाक्य समाप्त होते न होते एक बदमाश की बंदूक गरजी और दूसरे ही क्षण न जाने कितने छर्रे उस युवक के शरीर में घुस गए। लहुलुहान होकर भी उसने उस लुटेरे को नही छोड़ा। दूसरे साथी उसकी मदद को आए। वे डर रहे थे कि बंदूक की आवाज सुनकर किसी भी क्षण आसपास के लोग या पुलिस आ सकती है।

इसलिए दूसरे ही क्षण वे सब तीर की तरह भाग खडे हुए। डॉ विनीता और उसका बच्चा अभी भी यह कहते हुए रोए जा रहे थे कि 'ड्राइवर भैया इन्हें अस्पताल ले चलो, इन्हें बचाओ।'

पत्थर की मूर्तियों में जैसे प्राण लौटे। कुछ लोग तेजी से नीचे उतरे। सहेजकर उस युवक को बस में लिटाया। वह लगभग बेहोश था। कभी नजर उठती तो डॉ विनीता वर्मा की ओर उठती फिर बेहोश हो जाता। डॉ. वर्मा उन बीते कुछ क्षणों में बुरी तरह टूट गई थी। वह किसी भी तरह कुछ भी करके उसे बचाने के लिए बार-बार प्रार्थना कर रही थी।

उस युवक का नाम किसी को नहीं मालूम था। जब तक बस चली वह पूरी तरह बेहोश हो चुका था। कुछ लोग उसके पास बैठे थे। कुछ चुपचाप उस अंधेरे मे खिसक गए थे। मै भी उन्हीं बहादुरों मे था। मैं अपने अंतर में बहुत बेचैन था। पता

नहीं बचेगा या नहीं पर एक बार फिर उसने प्रमाणित कर दिया कि इनसान अभी मरा नहीं

बस तेजी से आगरा की ओर बढ़ रही थी पर मुझ अनबूझ पता नहीं था कि मैं हू भी या नहीं। हू तो कौन-सा मैं हूं। मेरे सिर मे तो अनहद नाद की तरह ये शब्द तेज-तेज गूंज रहे थे एक मुसलमान ने एक हिंदू औरत की अस्मत की रक्षा की। इतने हिंदुओं के सामने एक मुसलमान ने एक मुसलमान ने . एक मुसलमान ने एक हिंदू औरत की अस्मत की रक्षा की.

जितनी तेजी से ये शब्द गूज रहे थे, उतनी ही तेजी से मैंने पाया कि मैं भाग रहा हू, दौड नहीं रहा, भाग रहा हू।

डॉ. विनीता वर्मा

मुझे उनका नाम अस्पताल जाकर पता लगा, क्योंकि यह पुलिस केस था। कुछ यात्री भी रुके हुए थे। मैंने तुरंत अपने पति को खबर दी। वे परिवार के अन्य सदस्यो के साथ तभी आ गए। डॉक्टर ने पुलिस को बुलवा लिया था। उनके और मेरे बयान हुए। असलम जावेद नाम था उनका। उनके साथ बात करने को अभी डॉक्टरो ने मना कर दिया था। असलम जावेद रेलवे में इंजनों की देखभाल का काम करते थे। उस दिन अपनी ड्यूटी पूरी करके ईद मनाने आगरा अपने घर जा रहे थे। मुझसे दो वर्ष बडे थे। उनके घर में उनकी पत्नी आयशा और दो छोटे बच्चे—सात वर्ष का गुल मोहम्मद और पाच वर्ष की नाहिदा थी। मैंने तुरत एक साथी को उनके घर भेजा। सुनते ही उनकी पत्नी पागलों की तह रोती हुई अस्पताल आ पहुंची।

उसे लेने अस्पताल के बाहर मैं ही गई थी। उसने नजरे उठाई और मुझे देखा। मेरे लिए ही तो असलम भाई ने प्राणों का सौदा किया था। मैंने आगे बढकर उसे अपने मे भर लिया, "भाभी, तुम्हारे शौहर के कारण ही मेरी अस्मत, मेरी जिंदगी बच सकी है।"

आयशा ने भीगी नजरों से मुझे देखा, बोली "कैसे है वे? बच तो गए न।"

"बिलकुल बच गए। ऑपरेशन से डॉक्टर ने छर्रे बाहर निकाल दिए हैं। अब खून चढ़ाया जा रहा है। और यह भी अजीब संयोग ही है कि मेरे पति प्रो हरीश का खून तुम्हारे शौहर के खून से मैच कर गया।"

आयशा के मुख पर पहली बार मुसकान की आभा देखी मैंने। वह कुछ कह पाती कि डॉक्टर ने आकर कहा, "अब, आप उनके पास जा सकती है।"

प्यासे चातक-सी हम दोनों अंदर की ओर दौड़ी कि तभी दो नर्से पास से यह कहती हुई गुजरी कि एक हिंदू औरत की अस्मत और जिंदगी बचाने के लिए एक मुस्लिम युवक ने अपने प्राणो को खतरे में डाल दिया, पर शुक्र है भगवान का कि अब

वह खतरे से बाहर है!

हम दोनो ने सुना। एक बार तो मै काप गई। पर तब मैं 'मै' कहा थी। आयशा के साथ भागती-सी अंदर पहुंची। आयशा का विचित्र हाल था। आंखों में आसू थे, चेहरे पर मंद-मंद मुसकान। वह एकाएक अपने पति असलम जावेद पर झुक आई, बोली, ''कैसे हो तुम। बहुत दर्द तो नही है।. डॉक्टर ने क्या कहा? मैं तो बस, मर ही गई थी। वह तो इन आपा...''

मन एकाएक भर आया। चुपचाप सिर पर हाथ फेरती रही, फेरती रही। आयशा बस, देखे जा रही थी। उत्फुल्ल, गद्‌गद्.

जावेद भाई ने हम दोनो को देखा फिर आयशा की ओर देखकर कहा, ''मै ठीक हू, बिलकुल ठीक। इनके शौहर का खून चढ़ा है। अभी कुछ दिन तो यहीं रहना होगा। तुम जरा भी फिक्र मत करना। देखभाल को मेरा एक और घर हो गया।''

''हा, हा, क्यों नहीं,'' मै बोली, ''मैं तुम्हारी बहन, वे तुम्हारे जीजाजी और हमारा बेटा तुम्हारा भानजा। वह तो पागलों की तरह रो रहा है। यही बैठा है मगर तुम बोलो नही। भाभी, तुम भी यही बैठो भैया के पास। मैं बाहर उन सबको देखती हू। अभी यहां किसी को नही आने देना है।''

आने-जाने वालो का उस दिन तांता लग रहा था पर मैंने घर वालों, कॉलेज के और असलम जावेद के खास दोस्त व रिश्तेदारों को छोडकर सबको कल आने के लिए कह दिया।

एक प्रौढ़ा अचरज से बोली, ''देखो जी, कैसी माया है। एक मुसलमान ने हिंदू औरत की इज्जत और जान बचाई।''

एक डाक्टर ने दीर्घ सास ली, मुझसे बोला, ''बहनजी, अच्छे आदमी हैं अभी भी धरती पर। मुसलमान होकर उसने आपके लिए अपने प्राणों की परवाह नहीं की।''

एक मरीज खड़ा सुन रहा था, बोला, ''क्यों बहनजी, क्या हिंदू भी थे बस मे?''

एकाएक वजूद कांप गया मेरा, पर अपने को शांत रखते हुए बोली, ''हिंदू क्यो नहीं थे! ज्यादातर वे ही थे पर डाकुओं की बंदूको, छुरो के आतंक से सब जैसे पत्थर के देवता बन गए थे। बस एक यही भाई..''

''हां बहनजी, देखो एक मुसलमान ने ही हिम्मत की।''

धीरे-धीरे सांझ के साये बढने लगे थे। प्रो वर्मा अब पूर्ण स्वस्थ थे। वे घर जा सकते थे।

आयशा भी घर जाकर लौट आई थी। दोनों बच्चे गुल मोहम्मद और नाहिदा भी साथ आए थे।

''इन्हें क्यो ले आई रात को, भाभी।''

ये तो ज्यादातर ड्यूटी पर रहते हैं दोनों राह देखते रहते हैं रात में इनके साथ रहने के लिए आज तो और भी परेशान हैं और कल तो ईद है न कई दिन से हंगामा मचा रखा था। पर ये तो घर भी नहीं आ सके थे " कहते-कहते आंखें भर आइ आयशा की।

मैं समझ गई मन में दर्द मेरे भी उठा था पर मैं हँसकर बोली, "अरे भाभी! तो क्या हुआ? जहां भैय्या, वहीं घर। देखना, कल कैसे शान से ईद मनती है।"

आयशा ने मेरी ओर देखा। मैंने मुसकराकर प्रो वर्मा से कहा, "आप जल्दी आइए, मुझे घर जाकर ..."

प्राइवेट वार्ड का इतजाम प्रो वर्मा ने करवा दिया था इसलिए कोई परेशानी नहीं थी। मैंने जाते-जाते एक बार फिर आयशा से पूछ लिया, "कुछ चाहिए तो बता दो। मैं कल सवेरे आऊंगी। और सब भी आएंगे "

और हम चले आए। और सब भी चले गए थे। रह गए थे वे चारों।

नर्स आकर सब समझा गई। मैं द्वार तक पहुंची ही थी कि एक पुरुष ने मुझे दिखाकर अपनी पत्नी से कहा, "ये ही हैं वे डॉ विनीता। इन्हीं के लिए उस मुसलमान ने अपनी जान खतरे में डाली।"

पत्नी बोली, "आदमी जैसा काम किया उसने। हिंदुओं ने तो अपनी मर्दानगी का मुंह काला कर ही दिया था।"

बार-बार सुनती मैं। कुछ कसक जाता अंतर में तो रोने-रोने को हो आती कि इसमें हिंदू-मुसलमान की बात कहां से आ गई!

तभी कांप उठी मैं स्वयं, 'अनजान क्यों बनती हो! हम लोगों में क्या यही बात महत्त्वपूर्ण नहीं है। जात-जात-जात! जैसे हम जात के अलावा और कुछ नहीं। मां-बाप, भाई-बहन, दोस्त. कहीं कुछ नहीं, इनसान कुछ नहीं '

मैं विमूढ़, अबूझ-सी चली जा रही थी, तभी कानों में तेज आवाज गूंज उठी, "आज की सनसनीखेज खबर। रात एक बस पर डाकुओं ने हमला किया ।"

मैंने तुरत अखबार खरीदा। बहुतों ने खरीदा। वह आवाज लगाता आगे बढ़ गया। मैं पढ़ने लगी : "लुटेरे यात्रियों का सारा माल लूट ले गए। डॉ. विनीता भी उसी में थीं। उन्हें भी मारा। वह और उनका सात वर्षीय बेटा मदद के लिए चिल्लाए। उनकी मदद के लिए कोई आगे नहीं आया। लेकिन एक मुसलमान युवक गोलियों की परवाह किए बिना डाकुओं से गुत्थमगुत्था हो गया। डाकुओं ने गोली मारकर उसे घायल कर दिया पर शोर हो जाने के कारण पकड़े जाने के भय से वे भाग खड़े हुए। उस युवक का नाम असलम जावेद है। वह रेलवे में इंजीनियर है। डॉ विनीता लोगों की मदद से उसे आगरा अस्पताल लेकर आईं। खबर पाकर उनके पति भी आ गए। असलम जावेद नाम का वह युवक अब खतरे से बाहर है। एक मुसलमान ने इनसानियत की जो

मिसाल कायम की है, वही हमें अंधेरे से बाहर लाएगी।''

खबर पढ चुकी तो लगा काश संवाददाता ने मुसलमान शब्द का प्रयोग न किया होता।

असलम जावेद

अगले दिन मेरी तबीयत और भी ठीक हो गई। इतने लोगों का आना मायने रखता है और आज तो ईद का दिन है। अस्पताल का यह प्राइवेट वार्ड विनीताजी ने किसी शादी वाले घर की तरह जगमगा दिया। मैं तो देखता ही रह गया। विनीता ने भोर के तडके आते ही यहा का भार संभाल लिया। आयशा और बच्चों को घर भेज दिया। साथ मे जो सामान लाई थी उसे भी सभलवा दिया, ''देखो भाभी, आज मेरी एक बात रखनी पडेगी। मैं जो कपडे लाई हूं उन्हे ही पहनना एक बार। चाहे फिर उतार देना। और सेवैयां जरा जायकेदार बनाना, मैं भी बनाकर लाई हू।''

चकित-विमूढ आयशा बोल उठी, ''आप क्या सारी रात काम करती रहीं?''

''सच भाभी, रात काम करने में जो मजा आया, बता नहीं सकती बस, अब एक शब्द नहीं। जल्दी जाइए, बाहर गाडी खडी है।''

''गाडी?''

''हा, वह गाड़ी हमारी ही है। न, न, रात नहीं खरीदी। बहुत पुरानी है सैकंड हैंड।''

आयशा खिलखिला पडी, ''आपा, आप तो बस ''

''बस नहीं, घर जाइए। वे आने वाले होगे। मेरी मा भी आई है।''

मैं तो बस, देखता ही रहा। विनीता बोलने ही नहीं देती थी। पर अंदर जो शोर मचा था, जो घमासान मचा था, उसे वह शायद ही जानती हो।

उसके बाद दो जश्न मने। एक मेरे घर पर और एक यहा अस्पताल में। मै जानता हू, आज आयशा ने जी-जान से सजाया होगा घर को। मैंने तो बाद में देखा। विनीता आपा का लाया सामान देखकर वह तो देखती ही रह गई थी। उसके लिए कैसी बढिया रेशमी साडी, बच्चो के लिए ड्रेस, कुरता-पायजामा-टोपी, बिटिया का लहगा-चुन्नी, कानों के बुदे। बेटे का जूता भी खूब चमचमाता हुआ। दौड-दौडकर सब दोस्तो, रिश्तेदारो को दिखाते नहीं थक रहे थे वे दोनो। ढेर सारी मिठाई, फल, सेवैया। आयशा को बहुत कम चीजे बनानी पडी थी। बच्चे नमाज पढने चले गए थे। बच्चो के मामा उन्हें अपने साथ ले गए।

नर्सों की मदद से मुझे नए कपडे पहनाए गए। सच तो यह है कि इतनी खुशी मे दर्द भी हँस पडा था।

सबने आकर अपने कपडे दिखाए। आयशा दस्तरखान का इतजाम करती रही।

मेरे कमरे मे बहुत कम लोग थे।

नमाज के बाद, खाने से पहले, विनीता सबको मेरे कमरे मे बुला लाई, बोली, "सब बैठ जाए। अब मेरी ईद शुरू होती है।"

और उसने एक बहुत सुदर चादी की तश्तरी निकाली। उसमे चावल और रोली रखकर पानी मिलाया। फिर एक सुंदर दिप-दिप करती राखी निकाली। मेरे माथे पर टीका किया, बोली, "हाथ बढाओ।"

आयशा पास बैठी थी, जानती थी कि क्या करना है। उसने मेरा हाथ उठाया तो विनीता ने वह सुदर राखी उस पर बांधकर मुसकराते हुए कहा, "अब बहन की हिफाजत का भार भाई पर है। पर उसने तो राखी बाधने से पहले ही अपना फर्ज निभा दिया। ईश्वर मेरे भाई को खुशियो से भरी लबी जिंदगी दे।"

फिर उसने आयशा की ओर देखा, "तुम्हे खाली नही जाने दूगी। तुम्हारे माथे पर यह बिंदिया चमकेगी।"

और उसने एक बहुत ही सुदर बिंदिया उसके माथे पर चिपका दी। सचमुच आयशा का सुदर चेहरा और हजार गुना दमक उठा था। विनीता ने हँसते हुए आईना उसके आगे कर दिया। आयशा ने आंख उठाई तो वह दो बच्चो की मा, पागल-सी अपने ही चेहरे को किसी अजनबी की तरह देखती रह गई।

विनीता बोल उठी "भाभी बस, बस! अब जरा भइया को दिखाइए।"

आयशा लजा गई। सब खिलखिला पडे। पर मैं तो सचमुच देख रहा था, देखता जा रहा था। जरा-सी बिंदिया की वजह से

तब तक विनीता ने दोनों बच्चो को भी राखी बांध दी थी। फिर सबको मिठाई दी कि तभी उसे पति आ गए। बोले, "कुछ पत्रकार है। असलम भाई से दो-चार सवाल पूछना चाहते हैं। पुलिस भी आई है। उसे भी कुछ पूछना है।"

मैं चौक पडा, "मुझसे?"

"बस दो. चार ..मैंने डॉक्टर की इजाजत ले ली है।"

"तब ठीक है, पर मै "

"अरे, भाई डरो नही। जो कुछ हुआ, सब बता देना।"

और वहा सहसा सन्नाटा-छा गया। सब संभलकर बैठ गए। चार पत्रकार आए और चार ही पुलिस वाले।

मुझे कुछ समझ नही आ रहा था। मुझसे प्रश्न किया गया, "हम जानना चाहते है कि आपने मुसलमान होकर एक हिदू नारी के लिए अपनी जिदगी को जान-बूझकर दाव पर लगा दिया, क्या सोचकर? कैसा लग रहा था तब आपको?"

मैंने सवाल सुना। कई क्षण अपने विचारो को बटोरता रहा, फिर बोला, "सारी कहानी आप पढ और सुन चुके हैं देख भी रहे है। मुझे बस, वही कहना है जिसके

बारे में मेरे सिवाय और कोई नहीं जानता। जिस वक्त दरिंदों ने इन बहन को खींचना और मारना शुरू किया और ये और इनका बेटा जोर-जोर से रोते हुए हर किसी से मदद के लिए गिड़गिड़ाने लगे, उस वक्त जैसे एकाएक बादल गरजे हो और बिजली कड़कड़ाई हो। अचानक मेरी आंखों के सामने मेरी उस छोटी बहन का लहूलुहान कटा-फटा बदन आ खड़ा हुआ, जो दो वर्ष पहले ईद के ही दिन ऐसे ही एक हादसे में मारी गई थी। उसे देखते ही मैं थरथराया, कांपा और चीख उठा—''मेरी एक और बहन नहीं मरेगी . ।''

तभी एकाएक मै बुरी तरह हांफने लगा। तब एक ओर से विनीता ने, दूसरी ओर से आयशा ने मुझे सभाला। उनके आसू टप-टप मेरे ऊपर एक साथ गिर रहे थे।

मैने दोनो को परे हटाते हुए पत्रकारो और पुलिस की ओर देखा। कहा, ''बस, इतनी-सी बात थी जिसका फसाना कर दिया आप लोगो ने।''

मुरब्बी

गाव के ठीक बीचोंबीच उसकी दुकान थी। चारो तरफ नाना रूप टोकरिया सजाकर बीच मे एक चौकी पर वह शहनशाह की तरह तनकर बैठते थे। चेहरे की झुर्रिया बुढापे की साक्षी देने लगी थी और कहीं चोट खाकर एक पेर भी कुछ लगडा गया था। लेकिन आवाज की कडक सदा आयु को धोखा दे जाती थी। हर दीवाली के दिन वह सबसे पहले जलेबियो का टोकरा लेकर भंगियो की बस्ती मे पहुचते थे। घर मे जब कभी विवाह-शादी अथवा पुत्रोत्सव का अवसर आता तो सबसे पहले वह गाव के भगी-चमारो को दो-दो आने देते थे। हाथ से दान और मुंह से गाली देने में उनका सहज विश्वास था। हर गाली के साथ, 'राम थारा भला करे' कहना वह कभी नही भूलते थे। इसी शक्ति के बल पर वह गाव के मुरब्बी बन गए थे।

उस दिन पैठ का दिन था। छोटा-सा बाजार भीड से गुलजार था। चारों ओर से उठती आवाजों और धूल के कारण वातावरण मे एक धुंधली गूंज पैदा हो आई थी। सहसा भीड में से किसी ने कहा, "मका राम-राम, नदू चोधरी। किंघे चले?"

चौधरी ठिठके फिर हँसकर बोले, "ओहो, शेखजी दिक्खे है। अजी, लौंडिया के हाथ पीले करने है। सौदा-सुलफ लेने आया हूं। तम सुनाओ, किंघे जाओ हो।"

शेखजी कुछ जवाब दें कि उस पार अपनी चौकी पर बैठे हुए मुरब्बी एकाएक पुकार उठे, "नदू भाई, नदू भाई होत। अरे मका सुनेगा भी, यार। यहां तो आ जरा।"

कंधे पर चादर डाले नंदू चौधरी ने मुरब्बी को देखा। फिर पास आकर कहा, "राम, राम, मुरब्बी! दिके तुमको ही देक्खू था। लौंडिया का ब्याह है ना, बरतन चाहिए।"

मुरब्बी ने गहरी आत्मीयता से कहा, "हां, हां, क्या डर है। अभी चलता हू और कपडा नहीं लोगे? राम थारा भला करे, तमाखू, चावल . "

नदू कुछ उत्तर दे कि इससे पहले ही श्रीधर पांडे आ पहुचे। बोले, "मुरब्बी बढिया चावल चाहिए पांच सेर, क्या भाव है?"

जैसे किसी ने गाली दे दी हो, "क्या कहा, भाव? दिको घर वालो से भी कही भाव-ताव हो है। मगल, ओ मंगल, अबे हराम के खाने वाले, सुनै नहीं। पीलीभीत वाला चावल तो ला। गुरु आए है। हां, हां, वही कोने वाली बोरी में है।"

पांडेजी बोले, "अजी मुरब्बी! पहले भाव बताओ।"

मुरब्बी मुडे, "तो साफ-साफ कह दूं। राम थारा भला करें, ढाई पा कम तीन

सेर का भाव है। लेकिन आपके लिए आधा पा कम तौल दूगा ..ओहो, हाजी करीमुद्दीन दिक्खे है, सलाम हाजीजी। खडे क्यू रह गए? इघे बैठो ना। बढ़िया बासमती दिखाऊं?''

हाजी साहब ने कहा, ''बस, एक बार दिखा दो। बार-बार की बात मुझे अच्छी ना लगे।''

मुरब्बी के जैसे किसी ने चाटा मारा। तमककर बोले, ''तुमने क्या बात कही, हाजी साहब। कभी खोट्टा माल दिया है क्या?''

हाजी साहब बोले, ''नही, नहीं, यह मैंने कब कहा।''

मुरब्बी ने उसी स्वर मे कहा, ''और केमे कहोगे? दिके थारे सहारे दुकान पै बैट्ठा हू। पूछ लो गुरु से जो कभी उलटी बात कही हो। यह देक्खो, यह है बासमती देहरादून का। सूंघो जरा। खुशबू है, खुशबू। कहे देता हूं कि कढाव मे डालते ही गिरह भर की न हो जाए तो नाम बदल देना। राम थारा भला करे।''

हाजी साहब ने सूंघते हुए कहा, ''खुशबू तो है पर कुछ नई ''

मुरब्बी फिर तिनक उठे, ''क्या कहा? नई मालूम दे रही है। वही बात है। जैसी रूह, वैसे फरिश्ते। दिके हाजी साहब, दस साल से तो मेरी दुकान मे पडी है। ऐसी बासमती तो दीवा लेकर ढूंढो तो भी ना मिले। राम थारा भला करे, तुम हागे तीस-पैतीस के। जब थारे अब्बा जीवें थे, क्या नाम था उनका, बडे भले थे, क्या मजाल कभी दूसरी दुकान पै पैर रखा हो। दिके एक दफे माल नही आया था तो बोले, 'मै तो दूसरे की दुकान का रास्ता ही नहीं जानता।' तब चचा खुद बाजार से सौदा लाए। और तुम कहो कि बासमती नई है। यह चालबाजी थारे साथ करूगा। मूंछ मुंडा दूगा कि कोई हराम का खाने वाला कह तो दे, बासमती पुरानी नहीं है। राम थारा भला करे, वह बात है ..''

इसी बीच मे देवी खाना खाने के लिए कहने आ गया। बस, उबल पडे, ''खाने की पड गई अभी से। हराम के खाने वाले। देखता नही कि दम मारने की फुरसत नही। जाकर कह दे कि खाने बिना काम नहीं अटकेगा। मै उट्ठा तो शादियां अटक जाएंगी।''

पाडेजी हँसकर बोले, ''लेकिन मुरब्बी, जीने के लिए तो खाना जरूरी है।''

उसी गहन गभीरता से उन्होंने उत्तर दिया, ''तो भी गुरु, सांझ तक रुके रहने मे कोई हर्ज नहीं है। राम थारा भला करे, यमराज को अभी मेरी जरूरत नहीं है। उसके कौन-सी औलाद बैठी है जो शादी रचानी पडे।''

एक कहकहा लगा और फिर धीरे से गायो के खुरो के साथ अधकार बिखेरती सध्या ने उस गांव मे प्रवेश किया। मुरब्बी काफी थक गए थे। पैरो की नसे सुन्न पड गई थीं। उन्हे सहलाते हुए मगल से बोले, ''ओफ्फो भाई, अब जान मे जान आई। राम थारा भला करे, जैसे सारी दुनिया की शादिया इसी बार होंगी। खाना-पीना भी हराम हो गया। अच्छा, अब दुकान बढाना शुरू कर। अरे, देवी। ओ देवी, दीवा तो जला ला।

दिके इस आले में रखा है

बोलते बोलते रुपये पैसो का ढेर सामने लगा लिया कहा हराम के खाने वाले कहवे हैं कि मुरब्बी इतना कमावें, कुल जमा सौ रुपये भी तो नहीं आए दिक्खे क्या बचेगा? राम थारा भला करे, मुश्किल से दस रुपये। अरे हा, देवी, ओ देवी, दलाली का क्या रहा? कितनी दफा कहा, पैसे के मामले में यकीन नहीं किया करे, पर समझ मे ही नही आवे। राम थारा भला करे, कब समझोगे? क्या कमा के खाओगे? मका बिज्जू की तरह क्या देखे, जाके ला।''

वह गया ही था कि छोटा लडका राधे आ गया। बोला, ''चच्चा, मै कल शहर जाऊंगा।''

''तो फिर?''

''फिर क्या? तमस्सुकों की मयाद गली जा रही है। नालिश करनी पड़ेगी। कोई साला ले के ना दे है। जरूरत के वक्त पैर पकड लें और फिर तोते की तरह आख फेर लें।''

मुरब्बी ने कहा, ''सब सालो पै दावा ठोकना चाहिए।''

राधे बोला, ''दावा तो ठोकूगा ही, पर उनमे एक तमस्सुक मुनव्वर का भी है। थारा यार-बास है, कल को कहोगे कि पूछा भी नही।''

मुरब्बी के मुख पर सहसा कितनी ही हलकी-गहरी परछाइयां तेजी से उभरी लेकिन तुरंत ही धुंधला गई। उसी सहज कड़क के साथ जवाब दिया, ''उसमें यार-बास क्या करेगा? राम थारा भला करे, रुपया लिया है तो देना होगा। नहीं तो नालिश करनी होगी।''

राधे बोला, ''तब कल जाकर वकील को कागज दे आऊंगा।''

लेकिन जैसे ही उसकी पीठ फिरी, मुरब्बी जैसे चीख उठा, ''ऊं हूं, थारा यार-बास है. .कहोगे पूच्छा भी नहीं पूछकर क्या कर लिया। मुझसे कहलवाना चाहता था? शर्म नहीं आई हराम के खाने वाले को। बाप से भी छल करे, लाला को पता नही कि मै उसे तब से जानूं हूं जब लाला पैदा भी नहीं हुए थे। गरीब किसान खेती करके पेट पाले है, ऐसा यार-बास कि झूठमूठ भी काम का पता लग जाए तो दिके भागा जावे। परार साल गंगा माई चढ आई थी, सब घाट बहा ले गई। पानी इतना गहरा कि हाथी डूब जाए। राम थारा भला करे, मदर का कुआं उसी ने अपने हाथों से खोदा था। बोला—'वही हाथ अब भी हैं। रही जान की बात सो हाथ में नही, मन मे हो ' ''

मंगल ने धीरे से कहा, ''अब तो रोट्टी ले आऊं?''

वह चौक पड़े, ''क्या कहा? हां, हां, ले आ। सवेरे का भूक्का हूं। देख परांवठों में अजवायन डलवा देना और हां, चूरन लाना मत भूल जाना। अरे मेरे यार चला जावे है। बात तो सुन लिया कर दिके मुनक्का खतम हो गई, लेते आना। भूलना मत। अब खडा-खड़ा क्या देखे है। राम थारा भला करे. जा. दौड के जा।''

मगल गया तो घास वाली ने आवाज दी, "मुरब्बी! घास नही लोगे?"

एकदम जवाब दिया, "नहीं।"

और जैसे दूसरे ही क्षण कुछ याद आ गया हो पुकार उठे, "घास वाली! अरी ओ घास वाली! सुनती नहीं। एक ही गठडी है?"

घास वाली ने वहीं से जवाब दिया, "आजकल घास मिले कहा। ये ही मुश्किल से लाई हू। पेट तो भरना है। राम बरसता ही नहीं।"

"बरसेगा, जरूर बरसेगा। और राम क्या करें, करम भी तो हम खोट्टे करने लगे है। उसका कोप ही तो है कि जानवरों के लिए घास नही। जा, जा, डाल जा। राम थारा भला करे, लौटती बार पैसे ले जाना।"

घास वाली गई तो देवी की ओर देखकर बोले, "देखा देवी, न्यार की कितनी मुसीबत है। अब की बार मुनव्वर के खेत में कुछ नही हुआ, नही तो क्या वह न्यार पर पैसे डालने देता। क्या हुआ जो रुपये नही दिए। अरे, तमस्सुक पलट देता, पर मै तो कहूंगा ही नही। क्यों कहूं?"

मंगल खाना लेकर आ गया तो पैसे संभालने का भार देवी को सौप दिया। खाते-खाते इधर-उधर मुस्तैद कुत्तों को पुकारने लगे, 'तो तो तो तो ले ले, अरे, ले भी। वह देख, वह तेरे पा के पीच्छे पडा है। हट.. हट, अरे परे हट, बस, वही . वही खडा रह।"

यह लुका-छिपी चल रही थी कि मुनव्वर आ गया। सिर पर मोटा साफा, बदन पर फटी मिरजई और घुटनों तक की धोती और आंखो में निरीहता। बोला, "रोट्टी खा रहे हो, मुरब्बी! बहुत देर कर देते हो।"

मुरब्बी ने जवाब दिया, "आजकल तो यही रोना है, भाई। ब्याह न जाने किस-किसके होंगे, पर मुसीबत मुझे उठानी पडे।"

मुनव्वर हॅंस पडा। फिर दो क्षण तक कोई किसी से नहीं बोला। मुरब्बी ने ही वह चुप्पी तोडकर पूछा, "कैसे आए थे?"

एक क्षण सोचते हुए मुनव्वर ने जवाब दिया, "सुना है, छोटे लाला नालिश करने जा रहे हैं। इस फसल रुक जाते तो "

मुरब्बी ने जोर से हुंकारा भरा। कहा, "तो?"

मुनव्वर उसी तरह बोला, "दिके, तुम उसे जरा कह देखते।"

मुरब्बी ने एकदम जवाब दिया, "मैं कहूं? नही। मैं कुछ नहीं कहता! राम थारा भला करे, मैं किसी के झगडे में नहीं पडता।"

मुनव्वर सहसा हतप्रभ-विमूढ बोल नही सका। एक क्षण की थका देने वाली स्तब्धता के बाद मुरब्बी ने ही फिर कहा, "लेकिन तू रुपये दे क्यों नहीं देता?"

मुनव्वर धीरे से इतना ही बोला, "ये तुम कहोगे? होते तो क्या नहीं देता?"

मुरब्बी ने फिर दृष्टि उठाकर उसे देखा और निर्लिप्त भाव से कहा, "तो मैं क्या

करूं? मगल, ओ मगल! पानी ला भाई और ये बरतन हटा।''

और फिर पानी पीते-पीते बोले, ''देख, कही से कुछ हो सके तो किसी तरह से कुछ रुपये दे जा। बात टल जाएगी।''

मुनव्वर ने कुछ कहना चाहा, पर 'मुरब्बी' के अतिरिक्त मुंह से कुछ निकला ही नही। जैसे दिल कुछ ठडा होने लगा हो। कुछ देर शून्य मे खोया-खोया सिर झुकाए खडा रहा और फिर चुपचाप चला गया। उसके जाते ही मुरब्बी ने तेज होकर मंगल से कहा, ''गया तो जाने दे। हां, जरा देख के पानी डाल। दिन-भर हाथ-मुंह धोने की फुरसत नही हो, कितने गंदे हो गए हैं। और राम थारा भला करे, आज तो आख भी कडवा रही है। घर जाकर बडी बहू से सुरमा ले आना। राम थारा भला करे, समझ गया न?''

मगल ने अनमने भाव से पूछा, ''आज ही लाए?''

और भी तेज होकर बोले, ''और क्या कल लाएगा! आंख तो आज कड़वा रही है। हराम के खाने वाले, तुमसे कुछ नहीं होता। जरा-जरा-सा काम भी कह के करवाना पडे। बैठ यहीं, मै खुद जाता हू। कहा गया वो देवी? सब साले भाग जाते है। किसी का काम मे जी नही लगे। मेरी लकडी कहा है? दिके बिछौना बिछा देना और जो बचा-कुचा सामान पडा है, उसे भीतर रख देना। राम थारा भला करे, दिके खाली मत बैठना।''

फिर उठते-उठते बोले, ''और खाट के पास पानी रख देना। थैली तकिए के पास। राम थारा भला करे। अबे, मुनक्का ले आया था और चूरन?''

मंगल ने जवाब दिया, ''जी हा, सब ले आया था।''

''तो मैं अभी आता हूं।'' यह कहकर मुरब्बी घर की ओर चले गए। बहुत दूर नही था। लेकिन रात का सन्नाटा उस बडे गाव को अपने अतर मे समेट चुका था। जैसे आधी रात बीत गई हो। कही कोई कुत्ता भौक उठता या दूर गीदड 'ह्वा-ह्वा' करने लगता। आकाश मे कोई तारा टूटता और कहीं हुक्का गुडगुडाने की आवाज होती। कभी कोई अकेला आदमी तेज-तेज कदम निकल जाता तो कभी दो-तीन व्यक्ति जोर-जोर से बोलते हुए सन्नाटे की नीद हराम कर देते। क्षणिक तूफान की तरह सारा वातावरण अजीब-सी सोधी-सडी गंध से भरा था। देवी की मां घर के भीतर के दलान मे बैठी सूत अटेर रही थी। आयु पैंतीस वर्ष के आसपास, लेकिन देखने में तीस की भी नही लगती थी। सदा मुसकराती और काम में लगी रहती। देवी को आया देखकर उसने पूछा, ''आ गया तू? तेरे बाबा ने खाना खा लिया?''

देवी ने जवाब दिया, ''खा रहे थे। पर भाभी! आज उनकी तबीयत कुछ खराब है। बहुत देर तक आप ही आप बोलते रहे।''

प्रभा हँस पडी, ''अरे, यह तो उनकी आदत है।''

देवी ने रहस्य की बात बताने की मुद्रा में कहा, ''ना, भाभी! आज तो उनकी

आखो मे पानी आ गया था। बार-बार मुनव्वर की बात करे थे। शायद चच्चा के उस पर रुपये चाहिए।"

निमिष मात्र मे जैसे सब कुछ पारदर्शी हो उठा। बोली, "तो ये बात है। मै जानू हू। तेरे चाचा विष की गांठ है। नालिश-वालिश की बात होगी।"

सहसा उसी समय दूर से खट्-खट् की आवाज पास आती चली आई। उसी के साथ बहता चला आया एक स्वर, "बेट्टी, ओ बेट्टी।"

प्रभा हड़बडाकर उठी, "तेरे बाबा दिक्खे है। जरूर कोई बात है। बिना बात वह घर नही आते। तीज-त्यौहार या बीमार होने पर ही आते है।"

तब तक मुरब्बी पास आ गए थे। प्रभा ने पूछा, "कैसे आए? तबीयत तो ठीक है?"

एक पल वह चुप खडे रहे। फिर बोले, "दिके बेट्टी, मेरी गल्लक में कितने रुपये हैं?"

प्रभा ने अचकचाकर उनकी ओर देखा, "अभी परसों ही तो आपने सौ रुपये मगवाए थे। हाथ खुला रखने पर क्या रुपया जुडे है।"

मुरब्बी जोर से हँस पडे, "राम थारा भला करे, बेट्टी। वो बात है कि हाथ खुला रक्खो तो जुडे नहीं, बंद रक्खो तो जर लग जाए।"

"लेकिन इस वक्त आप रुपयों का क्या करेगे?"

"अब दिके, क्या बताऊ? मुनव्वर ने राधे से तीन सौ रुपये लिए थे। चुका नही पाया। चुकाने चाहिए। पर फसल खराब हो गई। राम थारा भला करे, गरीब है। अब तमस्सुक की मर्यादा गली जा रही है।"

प्रभा बोली, "तो क्या हुआ! तमस्सकु बदला नही जा सके?"

मुरब्बी ने धीरे से कहा, "सके तो है, पर कहे कौन? राम थारा भला करे, उसने न माना तो? वो बात है कि नादान की दोस्ती जी का जंजाल। सोच्चूं हू, क्यों झगडे मे पडूं, पर वो भी तो वक्त-बेवक्त हाथ बांधे हाजिर रहे। राम थारा भला करे, गाय कैसी असील खरीदवा दी। चाहे बच्चा दूह ले। खिलाई अच्छी होगी तो आठ-दस सेर दूध ले लेना।"

बोलते-बोलते वे जैसे कही खो गए। स्वर धीमा पडता गया। कहा, "दिके, जब मै फेरी लगाऊं था तो यही एक आदमी था जिसने मदद दी थी। महीनों इसकी झोपडी मे दुकान लगाई। राम थारा भला करे, बेट्टी, हराम का खाने वाले, ये क्या जाने। वो बात है, जिसके पैर न फटे बिवाई, वो क्या जाने पीर पराई।"

प्रभा ने पूछा, "आपको कितने रुपये चाहिए?"

"अभी तो सौ से काम चल सकता है। दिके बेट्टी, तेरी सास के बक्स मे गुलुबंद पडा होगा "

प्रभा एकाएक आपादमस्तक सिहर उठी, "वो तो भाभीजी का है। उसका आप

क्या करेगा? ठहरिए मैं अभी आई

मुरब्बी ने बैठते बैठते कहा हां हां बैठा हूं तू गुलुबंद ले आ राम थारा भला करे, किसी से कहने की जरूरत नहीं है।

वह तब तक जा चुकी थी। लंबी सांस लेकर कई क्षण मुरब्बी अपने-आप से बातें करते रहे, बड़बड़ाते रहे। जब लौटकर आई तो वह एकाएक चौक पडे, "राम थारा भला करे, ले आई गुलुबंद?"

प्रभा ने शांत स्वर में कहा, "जी गुलुबंद तो नहीं, सौ रुपये हैं। मेरे पास थे। जब आपकी गुल्लक मे हो जाएंगे तो रख लूंगी।"

मुरब्बी हतप्रभ, अनबूझ सहस्त्र युगो जितने एक पल में उसे देखते रहे। जब संज्ञा लौटी तो पुकारा, "बेट्टी!"

लेकिन प्रभा तो अब वहां थी नही। राधे था जो तेजी से आता हुआ सहसा उनसे टकरा गया था। एकदम बोला, "चच्चा तुम यहां? मका जी तो ठीक है?"

मुरब्बी ने एकाएक अकडकर कहा, "जी साला कहा जावे? वो तो तेरा ही पता नही लगे। ले संभाल, बुढापे मे इस मुनव्वर ने जान आफत मे डाल दी है।

राधे हतप्रभ-सा बोला, "दिके, समझा नहीं।"

मुरब्बी ने और भी शेर होकर कहा, "समझने की इसमे क्या है? नालिश करने को जा रहा था न, वही सौ रुपये दे गया है। बहुतेरा कहा कि मुझे बीच में न फांस, पर तेरे सामने आते ही उसकी नानी मरे। अब भाई गिन ले। किसी साले का एतबार नही। राम थारा भला करे, मैं चला।"

और यह कहकर वृद्ध मुरब्बी लकडी से खट-खट करते हुए वहा से चले गए। अक्खड राधे भौंचक कभी रुपयों को देखता कभी उनके जाने की दिशा की ओर। खट-खट की आवाज निरतर धीमी पड़ रही थी, लेकिन अंतर का तूफान उतना ही तीव्र होता आ रहा था।

सफर के साथी

आजकल सफर करना भी कोन चाहता है. पर अकसर बात ऐसी बन जाती है कि इनसान मजबूर हो जाता है। इसलिए जब मैं स्टेशन पर पहुंचा तो अपनी मजबूरी पर काप-काप आया। मालूम हुआ कि कल्कि भगवान् अवतार लेकर इसी ट्रेन से पधारने वाले हैं, क्योंकि सारा नगर उनका अभिनंदन करने के लिए वहा मौजूद था। मैने किसी तरह अगली पक्ति मे आकर सांस ली तो बेतहाशा मेरे मुंह से निकला, ''इत्ते आदमी!''

तभी मेरे पास खड़े एक सज्जन बोले, ''अभी से। अभी तो जनाबे वाला, गाडी आने में दो घटे की देर है।''

''दो घटे?''

''जनाबे वाला।''

''आप गलती पर हैं। एक्सप्रेस पौने नौ बजे छूटती है और अब साढे आठ बजे है।''

''साढे आठ,'' वे अचकचाए और फिर फुर्ती से जेब से घडी निकालकर बोले, ''लाहौल बिलाकूवत। मेरी घडी में सात बजे हैं। शायद बंद है, अजीब मुसीबत है, जनाब! पूरे तीन घंटे से स्टेशन पर मौजूद हूं।''

मैं हँस पडा, ''माफ करिए, आप शायद गाडी मिस कर गए हैं। इससे पहले मेल जा चुकी है।''

वे भी हँसे, ''बेशक, बेशक आप ठीक फरमाते है, लेकिन आपने मेल देखा नही है। एक की जगह पर तीन मुसाफिर बैठे थे। और ऊपर से मजा यह कि उनकी गोदियो मे भी लोग तशरीफ रखते थे।''

वे आगे कुछ कहते कि भीड में एक कोलाहल उमड़ पडा। अनेक कठ एक साथ पुकार उठे, ''गाड़ी आ गई,'' ''गाड़ी आ गई।'' अब क्या था, एक तूफान पैदा हो गया। मुझे ऐसा जान पडा कि समुद्र की लहरे बडी तेजी से स्टेशन को निगलने के लिए उमड पडी है और मै उस अपार जन-समूह के साथ उनकी लपेट में फंसकर बहा चला जा रहा हूं। कुछ सूझ नहीं पड रहा है। इनसानों की तसवीरे जल-जतुओं की तरह इधर-उधर दौड रही हैं। तभी किसी ने जोर से हाथ का बैग छीन लिया, ''अरे बाप रे!'' मै काप उठा कि उसी वक्त कोई चिल्लाया, ''लाला साहेब! इधर आइए, इधर।''

मैं चौंककर हडबडाया तो देखता क्या हूं, वही सज्जन पसीने से लथपथ खिड़की से झुककर चिल्ला रहे हैं, ''ओ लाला साहेब! आइए, आइए।''

बस, फिर क्या था, मै खिडकी में से भीतर खीच लिया गया। दरवाजे पर बराबर फौजदारी चल रही थी। न तो उतरने वाले उतर सकते थे और न चढने वाले चढ सकते थे। मैने सांस लेकर अपने चारो तरफ देखा तो पता लगा कि मेरे साथी (जिन्हें अब मै मौलाना कहूंगा) सामने ऊपर की बर्थ पर मेरे बिस्तर को सिर के नीचे और सूटकेस को पैरों के नीचे दबाए बडे इत्मीनान से लेटे हैं। बाकी गाडी मे एक अजीब दृश्य है। कुल 40 सीटों के लिए 85 इसान है। उनमें भी तीन–चार फौजी हैं, जो मौरूसी हकदारो की तरह पैर फैलाए लेटे है। कुछ दरवाजों के साथ दीवार से सट गए हैं। कुछ ने पैरो के नीचे जगह ढूंढ़ ली है। कुछ अभी तक खडे–खड़े चिल्ला रहे हैं और जब तक गाडी चलेगी, चिल्लाते रहेंगे। मैं जहां खडा था, वही बैठने लायक जगह थी, इसलिए चुपचाप वही बैठ गया। मौलाना ने मुझे देखा और कहा, ''लाला साहेब! सामान कब्जे में है। इत्मीनान से बैठ जाइए।''

मैंने हॅसकर कहा, ''शुक्रिया।''

वे बोले, ''अरे साहब, शुक्रिया की आपने खूब कही। वह देखिए तो आपके पीछे कौन साहब हैं, खीच लीजिए ऊपर हां, हां हां. .हां.. '' मैंने देखा कि तुर्की टोपी पहने एक नौजवान बडी आजिजी से कह रहे हैं, ''आने दीजिए जनाब! बहुत जरूरी सफर है। वक्त तग है।'' दरवाजे पर कृपाणधारी सरदारजी मौजूद थे। बडी लापरवाही से बोले, ''यहा जगह नहीं है, आगे जाइए, आगे।''

''अरे सरदारजी .''

''आगे जाइए. .''

कि तभी मौलाना फुर्ती से ऊपर से कूद पडे और बडी बेतकल्लुफी से उन मौलवी साहब को खिडकी से अंदर खींच लिया और बोले, ''अजी सरदार साहेब! सभी को जाना है। खडे–खडे चले जाएंगे।''

गाडी भी चल पड़ी। मैदान आया, हवा लगी, मुरझाए हुए दिल खिल उठे और मुसाफिरों ने आराम की सांस खींची। कुछ आपस मे बातें करने लगे, कुछ ने दीवार से सिर लगाकर आंखें मींचीं, कुछ अखबार या किताबे पढने मे मशगूल हो गए। फौज के सिपाही जेब में से बिस्कुट निकालकर चबाने लगे। मेरे पास 'विश्ववाणी' का 'चीन अक' था, मैं उसी को पढ़ने लगा और सोचने लगा कि जापान का मुकाबला करने के लिए हमें चीन से बहुत कुछ सीखना पडेगा। न जाने कब तक इसी सोच–विचार मे पडा रहा कि अचानक मुझे लगा, हमारे डिब्बे में बडी तेज शरीफाना बहस छिड गई है। मैंने पत्रिका हटाकर उस ओर ध्यान दिया तो पता लगा कि मौलवी साहब बडी सजीदगी से हमारे मौलाना को समझा रहे थे, ''जनाब! आप भूलते हैं, 'हिंदुस्तानी' न कोई कौम है, न बन सकती है। इनसानी बिरादरियां कभी कौमियत पर नहीं बना करतीं, उनकी बुनियाद मजहब पर है। पैगबर ने पहले ही यह ताकीद कर दी थी कि किसी भी मुल्क के हो, मुसलमान सब एक है। उन्होने कही नही कहा कि अरब के

मुसलमान और गैर-मुसलमान सब एक है। उन्होंने इनसानों को हमेशा के लिए दो फरीकों मे तकसीम कर दिया है--मोमिन और गैर-मोमिन।''

वे बोल रहे थे और मौलाना मेरे सूटकेस को पैरों में दबाए उनके मुंह की तरफ बड़ी लापरवाही से देख रहे थे। वे चुप हुए तो मौलाना ने बड़ी जोर से 'हूं' कहा और चुप हो गए। मौलवी साहब फिर बोले, ''कौमियत को आज भी कोई नही मानता। रूस की शोहरत आज कितनी है। उसी रूस को बनाने वाले लेनिन ने मजदूरों को इकट्ठा करने की जो स्कीम बनाई है, वह भी कौमियत की तरदीद करती है। उसने यही कहा है कि दुनिया के मजदूरो, यानी रूस, हिंदुस्तान, ईरान, फ्रांस आदि सारे मुल्को के मजदूरो, एक हो जाओ। उसके कहने के मुताबिक, हिदुस्तान का मजदूर और रूस का मजदूर आपस मे भाई है, जबकि रूस का मजदूर रूस के सरमायादार का दुश्मन है।''

मै उनकी दलीले सुन रहा था कि उसी वक्त अचानक स्टेशन आ गया। डिब्बे मे फिर खलबली मच गई। मौलाना कूदकर नीचे आ गए और जो भी मुसाफिर उस डिब्बे मे दाखिल होना चाहता था, उसे ऊपर चढाने लगे। मौलवी साहब बोले, ''वल्लाह, आप क्या करते हैं? कहा बिठाएंगे इनको?''

''अरे साहब,'' मौलाना ने लापरवाही मे कहा, ''बैठ ही जाएंगे, आप भी तो बैठे है।''

ज्यों-त्यों कर गाडी ने सीटी दी और मौलवी साहब ने फिर फर्राटे के साथ अपनी दलीलें शुरू कीं। लेकिन मौलाना उनकी बातो पर कोई ध्यान नहीं दे रहे थे। वे अपने सामने बैठे हुए मुसाफिरो में से एक काले से नाटे मुसलमान युवक को बडे गौर से देख रहे थे, जो पिछले स्टेशन पर इस डिब्बे मे चढा था और स्टेशन से दूसरी तरफ, जिस तरफ बस्ती थी, मुंह करके दोनों हाथ फैलाए खड़ा ध्यान के साथ अल्लाह से दुआ मांग रहा था। वह चौडी काली किनारी का तहमत लपेटे हुए था। उसके कलफ किए हुए चिकन के कुरते से उसका काला बदन साफ चमक रहा था और उसके डरावने चेहरे से इनसानियत इस तरह झलक रही थी, जिस तरह काली रात में चांद झलकता है। वह इसी हालत में बड़ी देर तक दोजानू बैठा रहा । मौलाना तब तक बडे गौर से उसे देखते रहे। गाडी में चिल्ल-पों मच रही थी। एक मारवाडी लाला बडे जोर से एक भगी पर भडक रहे थे। इसी बीच दुआ खत्म होने पर युवक ने दोनो हाथ अपने मुंह पर फेरे और खड़ा हो गया। मौलाना ने जरा मुलायमियत से उस जवान से पूछा, ''मेरे दोस्त। आप बता सकेंगे, उधर क्या है?''

नाटे युवक ने बडी बेतकल्लुफी से कहा, ''किधर?''

''जिधर देखकर आप दुआ मांग रहे थे।''

युवक संजीदा हो उठा, ''वह एक लंबी कहानी है।''

''तो सुनाइए न। दिल ही बहलेगा।''

युवक ने कहा, ''वह दिल बहलाने की कहानी नहीं है, मौलाना, बल्कि दिल

पाक करन वाली दास्तान हे

मौलवी साहब की उत्सुकता जागी, ''किसी शहीद का मकबरा होगा?''

''जी हा, वह मकबरा ही है, लेकिन जिंदा शहीद का है।''

मौलवी साहब चकराए। मारवाडी लाला चुप होकर उसे देखने लगे। फौजियो ने भी उधर आंखें फेरी, लेकिन मौलाना हॅस पडे, ''आप तो जनाब पहेलिया बुझा रहे है। साफ-साफ बताइए यह किसका मकबरा है?''

अब उस नाटे जवान मे बडप्पन उभर आया। उसने कहा, ''मौलाना साहब! यह ऐसी कहानी है जिस पर आज की दुनिया को एतबार नही आ सकता, लेकिन आप सुनना ही चाहते है तो मुझे कोई एतराज नहीं है। मैने यह कहानी अपने अब्बा की जबानी कई बार सुनी है। जिस चबूतरे को आप मकबरा समझ बैठे हैं वह असल मे मामूली चबूतरा है, जिस पर दिन के वक्त गरीब कुंजडे और माली साग-सब्जी बेचा करते हैं। अब्बा कहते थे कि उनके वक्त में इसी चबूतरे को लेकर कस्बे के हिंदू-मुसलमानो में सख्त तनातनी छिड गई थी। हिंदू कहते थे, यह चबूतरा हमारा है, हम इस पर कथा किया करेगे। मुसलमानो का तकाजा था कि हम इस पर नमाज पढते है और जिस जगह नमाज पढ़ी जाती है उस जगह के लिए मुसलमान अपना सिर देने मे भी गुरेज नहीं करेंगे। इसको लेकर कई बार दोनो कौमो के कई बेगुनाह इनसानों का खून भी बहा और मुकदमे भी हुए। कई होनदार नौजवानो ने जेलों में अपनी जिंदगी बरबाद की, लेकिन जैसा कि इन मामलो में हमेशा होता है, इस चबूतरे का फैसला न हो सका। हिंदुओं के सरगना कस्बे के एक मशहूर वैद्य ला सुंदरलाल थे और मुसलमानो के नेता महबूब कसाई थे। दोनों संप्रदायो मे जोश था, जुनून था और थी मजहब के लिए मर-मिटने की तमन्ना। सरकारी अफसर हमेशा की तरह कान में तेल डाकर बैठे थे, लेकिन रात को सोते समय हर शख्स यही चर्चा करता था कि कल न जाने क्या हो जाए और कितना खून बहे। बारिश होने से पहले दम घोट देने वाली गर्मी की तरह वह हालत सबको सता रही थी कि एक रात सचमुच ही सांप्रदायिक दगे के बादल उमड-घुमड़कर कस्बे पर छा गए..''

कहते-कहते युवक की आंखे चमकने लगीं। मौलाना के साथ अनेक निगाहे एक बार उस पर जा अटकीं। सबके दिल में अलग-अलग कौतूहल उठा, ''आगे क्या हुआ?''

युवक कहता रहा, ''लेकिन उसी रात एक अनहोनी घटना घटी। महबूब कसाई का इकलौता बेटा रमजान एकाएक सख्त बीमार हो गया। दो घटे के अदर ही उसका मुंह नीला पड गया और हाथ-पैर ठडे हो आए। महबूब ने कलेजा थाम लिया। घर में कुहराम मच गया। उसकी वालदा ने बाल नोच डाले। पडोसियो के चेहरो पर मौत की खौफनाक तारीकी छा गई कि अचानक महबूब के एक चचा बोल उठे, 'इसकी दवा एक ही आदमी के पास है।'

'किसके पास?' एक साथ कई आवाजे आई।

''चचा बोले, 'कोई फायदा नहीं, क्योंकि तुम वहा तक नही पहुंच सकते। ला सुदरलाल ही इस वक्त रमजान को बचा सकते है। उन्हीं के पास इस मर्ज की दवा है।'

''सुनकर बेहिसाब खामोशी छा गई। महबूब ने दोनों हाथों से मुंह ढाप लिया। तभी अदर से खडखडाहट हुई। रमजान की वालदा कह रही थीं, 'मै जाऊगी।' फिर भी कोई नही बोला। सब बुत बने बैठे रहे। दुश्मन के आगे गिडगिडाना मौत के दर्द से हजार गुना गहरा दर्द है। महबूब के दिल में बार-बार उठा, 'मेरा बेटा, मेरा इकलौता बेटा! आह खुदाबंद करीम! परवरदिगार! तू क्या चाहता है।'

''उसके दिल में कैसा तूफान उठ रहा था, यह वही जान सकता है जिसके खानदान की आखिरी लौ बुझने से पहले टिमटिमा रही हो। अंदर से फिर आवाज आई, 'मै जा रही हू।' कि एकाएक रमजान के अब्बा उठ खडे हुए और बोले, 'चचा! चलो, मै लाला सुंदरलाल से बेटे की भीख मांगूंगा!'

''चचा उठे, और भी कई आदमी साथ चले।

''बाहर सन्नाटे के साथ तारीकी गलबाही डाले सोई थी, लेकिन उसी की छाती पर पैर रखकर वे आगे बढे चले गए। तंग गलियां, गढों से भरे हुए चौक, फिर बिजली की रोशनी से चमकती हुई तारकोल से लिपी-पुती सडकें पार करके जब वे लोग सुंदरलाल की कोठी के सामने पहुंचे तो उनकी बैठक की खिडकियों से होकर बिजली की तेज रोशनी सडक पर बिखर रही थी। एक साथ कई आवाजें सुनाई पड रही थीं और उन सब आवाजों से ऊपर उठकर उनके पेंचदार हुक्के की गुडगुडाहट काफी दूर तक सन्नाटे को भंग करती हुई फैल रही थी। कस्बे के हिंदू नेता तनातनी के किस्सें को लेकर बहस कर रहे थे कि दरवाजे पर दस्तक हुई। पूछा, 'कौन है?'

''जवाब मिला, 'महबूब।'

'' 'महबूब?' कई आवाजें बौखलाहट में एक साथ सुनाई दीं। हुक्के की गुडगुडाहट एकदम तेज होकर रुक गई। दरवाजा खुला। महबूब सीधे जाकर लालाजी के पास बैठ गया और कहा, 'लाला साहब! इस वक्त मुसलमानो का नेता महबूब हिदुओं के नेता से मिलने नहीं आया, बल्कि एक इनसान दूसरे इनसान से भीख मागने आया है।'

''इतना कहकर उसकी आंखें भर आई, आवाज नही निकली। कमरे में सन्नाटा छा गया। लाला सुंदरलाल ने हुक्के का कश जोर से खींचा और महबूब के चचा की तरफ मुखातिब होकर पूछा, 'क्यो अब्दुल्ला, क्या बात है?'

''चचा ने कहा, 'महबूब का एक ही बेटा है, वही मौत के पंजे में फंसा है। तुम्हारे पास उसकी दवा है। तुम्हीं उसे बचा सकते हो।'

''सन्नाटा और भी गहरा हो आया। सभी ने भेद-भरी निगाहों से एक-दूसरे को

दखा। लाला सुदरलाल ने फिर एक बार जोर का कश खीचा। धुए का अबार मुह से उठकर चारों तरफ फैल गया। एक क्षण के बाद बोले, 'आप लोग जाए। मै अभी आता हू।'

''निगाहे फिर एक-दूसरे से मिलीं। वे लोग उठे, निहायत अदब से झुककर सलाम किया और चले गए। कमरे में अब सभी एक साथ बोल उठे, 'यह सब धोखा है। आप वहां नही जा सकते।'

''लाला सुदरलाल हँसे, 'हो सकता है, पर मैं जाऊगा। मे वचन दे चुका हूं। अब जो कुछ भी हो।' और उन्होंने पुकारकर कहा, 'अहमद, ड्योढ़ीवान से कहो, लालटेन लेकर मेरे साथ चले।'

''उसके पंद्रह मिनट बाद ही अहमद को आगे करके लाला सुंदरलाल तग गलियों मे बढ़े चले जा रहे थे। महबूब का घर आया, दरवाजे पर चचा थे। लेकर अंदर बढ़े। एक ड्योढी, दो ड्योढी, तीन ड्योढी एकाएक लाला सुंदरलाल कांप उठे—कहीं सचमुच धोखा तो नहीं है। पर तीसरी ड्योढी पार करके जैसे ही उन्होंने सहन में कदम रखा तो कई आवाजे एक साथ आदाब बजा लाई। उन्हें रमजान के पास ले जाया गया। लाला साहब बडी देर तक नब्ज थामे बैठे रहे। रोगी की परीक्षा की, पेट देखा, आंखें खोलीं और फिर बोले, 'महबूब! तुम्हारा बेटा बच जाएगा ' ''

कहते-कहते सहसा उस युवक की आंखें चमककर गीली हो गई। सुनने वालों के दिल धडक रहे थे। युवक ने एक लंबी राहत की सांस खींचकर कहा, ''आगे कहना फिजूल है। वह लडका बच गया। उस रात जो बादल खून बरसाने उमड़े थे, पानी बरसाकर चले गए।

''दो दिन बाद लाला सुदरलाल के मकान पर यह फैसला हुआ कि यह चबूतरा कस्बे के गरीब कूजडों और मालियो को सौप दिया जाए जो इस पर बैठकर सब्जी बेचा करेंगे।''

गाडी तब पूरी तेजी से दौड़ रही थी। चबूतरा बहुत पीछे रह गया था, लेकिन सभी सुनने वालों की आंखें उस वक्त चबूतरे को अपने सामने देख रही थीं।



आज होली है?

डॉक्टर ने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा, ''आप उत्तेजित न हो, नगेन बाबू! शहर मे अब शाति है।''

''शाति है?'' नगेन ने भी उसी शात भाव से कहा, ''लेकिन डॉक्टर साहब, क्या आप बता सकेंगे कि आज क्या है?''

''आज?'' डाक्टर जैसे सोच मे पड गए।

''हां, आज वे लोग आने वाले है।''

''नगेन बाबू! आप तनिक सो लीजिए। उनके आने पर मै आपको खबर दे दूगा।''

''धन्यवाद! लेकिन आपने बताया नहीं कि आज क्या है?''

''आज हां याद आया, आज होली है।''

''और आज भाभी आएगी।'' कहकर नगेन हँस पडा खूब जोर से।

''नगेन बाबू! नगेन बाबू! क्या कहते है आप?''

''कुछ नहीं, डॉक्टर साब। सोचता हू पारसाल जब मै होली पर घर गया था तो भाभी ने मुझे खूब उपदेश दिया था। मेरी भाभी बहुत पढी-लिखी हैं। शास्त्र की बातें जानती हैं। धर्मशास्त्र की नही, मानसशास्त्र की. ।''

एक क्षण वह रुका। डॉक्टर की ओर अर्थ-भरी दृष्टि से देखा, फिर बोला, ''डॉक्टर साब, आज भी सब लोग होली खेल रहे हैं पर एक अंतर के साथ। क्राति का रंग लाल है और रक्त का रग भी लाल है। इसलिए क्रातिधर्मा हिदू-मुसलमान एक-दूसरे के रक्त से होली खेलते है।''

और नगेन फिर हँस पड़ा। डॉक्टर ने धीरे से उसकी छाती को दबाकर कहा, ''आप फिर उत्तेजित होने लगे, नगेन बाबू। थोडा सो लीजिए न।''

नगेन ने डॉक्टर की ओर देखकर कहा, ''अच्छा डॉक्टर साब! लेकिन आप यही बैठे रहिए।''

''मैं यही बैठा हू।''

और धीरे-धीरे नगेन ने आखे मींच ली, पर नींद नही आई। आई पारसाल की धुंधली-सी याद मन के पटल पर वैसी ही धुधली छाया फैलती हुई चली गई .

. भाभी के तनिक पास आकर विद्या ने कहा, ''जानती हो, भाभी, भइया क्यो आए है?''

भाभी बोली, "अपने घर आने के लिए भी कोई कारण होता है, पगली।

विद्या अप्रतिभ नही हुई। हँसकर बोली, "तो भी एक विशेष कारण है, भाभी," और फिर नगेन की ओर मुडकर मुसकरा पडी, "क्यो भइया? ठीक कहती हूं न?"

नगेंद्र ने इतना ही कहा, "खाक ठीक कहती हो।"

"यही सही, भइया, भाभी के साथ होली खेलकर तुम 'खाक' ही पाने की आशा लेकर आए हो न।"

और खूब जोर से हँसती खिलखिलाती विद्या वहा से भाग गई।

भाभी भी हंस पडी थी। झरने की कलकल ध्वनि-सी वह शात हँसी

छाया गायब हो गई थी। नगेन चौंक पड़ा, "डॉक्टर साब, आप जानते हैं किस शास्त्र ने हमें भाभी के साथ होली खेलने का अधिकार दिया है। नही, आप नही बता सकते क्योंकि बहुत-सी बातों का विधान धर्मशास्त्रो मे नहीं मिलता। परंपरा ही उनके लिए एक मात्र विधि-विधान और नियम-शास्त्र हैं। यही बात भाभी-देवर के होली खेलने के सबध मे है। न जाने कब किस देवर ने पहले-पहल किस भाभी के साथ होली खेली होगी। यह एक शोध-प्रबंध का विषय हो सकता है "

डाक्टर ने कहा, "आप ."

"अच्छा, डॉक्टर साहब, आपकी भाभी हैं?"

"आप सो जाइए नगेन्द्र बाबू।"

डॉक्टर उसके माथे पर हाथ रख लेते हैं। वह फिर आख मीच लेता है। नीद नही आती। विद्या आती है, "नगेन भइया, भाभी इन सब बातों को पसद नही करतीं।"

"क्यों री?"

"वे कहती हैं, जो संस्कारो के गुलाम है, जो ऊच-नीच और छूत-छात को मानते हैं, उन्हे आमोद-प्रमोद का अधिकार नही होता।"

"भाभी कहती है यह?"

"हा भइया। तुमने देखा नही, वे कितनी सादी रहती है। देवी हैं वे, भइया। एक दिन मुझसे दाल मे नमक ज्यादा पड गया था। पर उसी शात भाव से खाती रही। मैंने कहा, 'भाभी। नमक ज्यादा है।' तो बोलीं, 'पड़ जाता है, विद्या। अगर ज्यादा न पडे तो ठीक का पता कैसे लगे।' और तुम्हें पता है कि उनके घर में तो खाना पकाने का काम भी हरिजन स्त्री करती है ।"

नगेन ने फिर आंखें खोल दीं। डाक्टर वही उसी तरह बैठे थे। उसने कहा "अभी-अभी मुझे एक बात सूझी है, डॉक्टर साहब। अगर हिदू-मुसलमान न लडे तो शाति के महत्त्व को हम कैसे पहचानेगे। शांति ध्येय है तभी तो संघर्ष अनिवार्य है।"

इस बार डॉक्टर ने जवाब नहीं दिया। दो क्षण बाद नगेन को सचमुच लगा कि उसे कुछ सो लेना चाहिए। सध्या को भाभी जरूर आएंगी। मुझे उत्तेजित देखकर वे दुखी होंगी। उसने सिर की पट्टी पर हाथ फेरा। छाती पर रखे हुए दाहिने हाथ को

सहलाया और आंखे मीच ली। उसे लगा जैसे दर्द कम हो रहा है। पास के कमरे का जो घायल व्यक्ति है, वह भी 'हां' 'हू' नहीं करता। दूर नगर तक सन्नाटा ही सन्नाटा है

पर नींद है कि आती ही नही। भाभी पूछती हैं, "नगेन भइया। आप होली क्यो मनाते हैं?"

नगेन झिझका, फिर बोला, "अनेक बातें हैं, भाभी।"

"बताओ न फिर।"

तब नगेन ने भाभी को अनेक कहानिया सुनाई—प्रह्लाद की, कृष्ण और राजा पृथु के राज में बसने वाली ढूंढा राक्षसी की। फिर बोला—"भाभी। अपने ही देश मे क्यों, फ्रांस, इंग्लैंड, जापान, रूस सभी जगह तो होली खेली जाती है। बरमा मे रग नही डालते, विशुद्ध जल से खेलते है वे। कैसा उल्लास, कैसा आनंद, कैसी शालीनता स्त्रिया भी समान रूप से "

"सच? बाप रे बाप। कितना विपुल है ज्ञान तुम्हारा?"

वह बोलता रहा, "भाभी। यह तो प्रकृति का त्यौहार है। बसत ऋतु की फसले पककर तैयार होती हैं। प्रकृति हँसती है। विज्ञान हॅसता है। उन्हे देखकर हम भी हॅसते है। हॅसना जीवन है न? दुनिया के झंझटों में पड़कर रात-दिन हम रोते रहते हैं। एक दिन खूब जी-भर हँस ले, ऐसा सोचकर हमारे दूरदर्शी पुरखो ने होली का त्यौहार चलाया होगा। कितनी अनोखी सूझ थी उनकी, भाभी।"

"हा, भइया! बडी अनोखी सूझ थी उनकी। साल-भर रोकर एक दिन हँस लो या एक दिन हॅसकर साल-भर रो लो। कितना महगा सौदा है यह!"

"भाभी ."

"नगेन भइया, हँसना और रोना कभी एक साथ नहीं हो सकते। और भइया, एक बात और भी है—जब एक रोता है तभी दूसरे को हँसी आती है।"

"नहीं, भाभी। आज तो सभी हँसते हैं "

और नगेन फिर चौंक पडा, "सभी हँसते है? क्यो, डॉक्टर साब, आप शहर गए थे? आपने देखा। सब हॅस रहे थे। नहीं, नही, भाभी ठीक कहती हैं, सब नहीं हॅस सकते। हां, आज सब रो जरूर रहे होंगे। पर वह भी मिलकर नहीं, अलग-अलग। कमबख्त एक साथ रो भी नहीं सकते "

"आप फिर क्या-क्या कहने लगे, नगेन बाबू। नींद नहीं आती?"

"हा, डॉक्टर साब आज नींद नहीं आ रही है। भाभी आ रही हैं न। मैंने उनसे कहा था, होली प्रकृति का पर्व है, पर क्या आपने आज की प्रकृति को देखा है? मुरझाई हुई फसले, दूर पृथ्वी के उस छोर तक फैला हुआ पीलापन और उसके बीच मे जीर्ण-शीर्ण कंकालों की चलती-फिरती भयातुर छायाएं.. "

"नगेन बाबू। आप इन सब बातों की चिता क्यो करते है?"

नगेन बोला आप मेरी चिंता क्यों करते हैं डाक्टर? दूसरे के कष्ट देखकर जबरदस्ती मन में दर्द पैदा करना एक रोग है क्या सभी डॉक्टर इस रोग के रोगी होते हैं?

"हां भइया!" धीमी व्यथित वाणी में बोले डॉक्टर और छत की कड़ियों को देखने लगे।

"आप बुरा मान गए, डॉक्टर साब। आज होली है। सभी कहते हैं, कहे-सुने का बुरा न मानो, होली है।"

डॉक्टर हँस पड़े। नगेन चुप होकर फिर सोने की चेष्टा करने लगा। पर होली की याद उसे न भूली। वह फिर भाभी के पास जा पहुंचा, "तुमने मेरी बात नहीं मानी, भाभी।"

"कब भइया? होली खेलने को कहते हो न! मना नहीं करती। बैठी हू, खूब खेलो।"

"सच, भाभी?"

और वह दौड़कर रंग ले आया— लाल, पीला, नीला, हरा। भाभी वहीं उसी तरह बैठी रहीं।

नगेन ने पिचकारी भरकर कहा, "भाभी, हो जाओ तैयार।"

उसी तरह, उसी जगह से भाभी ने कहा, "बैठी हू, नगेन।"

नगेन आगे बढ़ा, पर भाभी की ओर देखकर ठिठक गया, "भाभी, मैं नहीं खेलूंगा।"

"क्यों रे?"

"विद्या कहती थी, तुम यह सब पसंद नहीं करतीं।"

"मै पसद न करू, पर तुम तो पसद करते हो। तुम्हारी पसंद मुझे मान्य क्यो न होगी।"

"नहीं भाभी। जिस बात को सब पसंद नहीं करते, उसमे जीवन नही होता।"

"क्या कहने लगे तुम, नगेन? दुनिया में तो रात-दिन ऐसा ही होता है। एक की पसंद जबरदस्ती दूसरे के सिर पर लाद दी जाती है। कोई भी प्रश्न नहीं उठाता।"

"नहीं भाभी, नहीं। मैं अपनी पसंद तुम पर नहीं लादूंगा। जानता हू, मेरा मन रखने को तुम यह सब कह रही हो, पर भाभी, हम संस्कारो के गुलाम है। हमे क्या रंग-रलियां मनाना सुहाता है।"

भाभी सहसा एक साथ हर्ष और विषाद मे भर आई। वह अपने स्थान से उठीं और नगेन के सामने आकर बोली, "पगली विद्या के कहने मे आकर पागल न हो जाओ। डालो रग, मै तनिक भी बुरा न मानूंगी, भइया।"

और कहते-कहते भाभी अद्भुत रूप से मुसकरा उठीं। नेत्रो में वात्सल्य की भावना सजग हो आई।

नगेन ने उन नेत्रों में झाका, चुपचाप रंगवाली बाल्टी उठाई और भाभी के चरणों पर उंडेल दी। फिर शीघ्रता से उन्हें छूकर बोला, "यही है भाभी, मेरा हर्ष, मेरा आमोद-प्रमोद यही है।"

और अस्पताल के एक कमरे मे लेटे हुए नगेन के अतर से एक सिसकी फूट पडी।

"अरे, आप रोते है, नगेन बाबू!" डॉक्टर हडबडाकर उसके ऊपर झुक आए "आप खतरे से बाहर हैं। आपके भाइया-भाभी आने ही वाले हैं . ।"

"डॉक्टर साब, यह सन्नाटा अच्छा नही लगता। क्यो डॉक्टर साब, ये हिंदू-मुसलमान क्या आदमी नही है "

"मैं नहीं जानता, नगेन बाबू, वे क्या हैं? मैं तो यही जानता हू कि आपको अब सो जाना चाहिए। लीजिए, यह दवा पी लीजिए।"

डॉक्टर ने एक गिलासी में भरकर दवा दी और नगेन उसे चुपचाप पीकर लेट गया। बोला, "बाईं ओर करवट ले सकता हू न?"

डॉक्टर ने बिना कुछ कहे उसे बाईं करवट लिटा दिया और कुरसी सरकाकर उसके सिरहाने आ बैठे।

नगेन सो गया। डॉक्टर उठकर कमरे में बीचोबीच टहलने लगे। सिविल सर्जन ने कहा था– आज नीद आ गई तो भय नही है।

और नींद आ गई थी। लेकिन आधा घंटे बाद ही पास के कमरे मे कोई बडे जोर से रो पडा। उद्विग्न होकर डॉक्टर ने देखा–मृत व्यक्ति की लाश पर झुका हुआ एक आदमी फूट-फूट कर रो रहा है। और कपाउडर यंत्रवत् कह रहा है, "चुप रहिए आप। अस्पताल मे रोया नही करते।"

रोने की आवाज से नगेन भी चौक उठा. "क्या है, डॉक्टर?"

"कुछ नहीं, नगेन बाबू। सब ठीक है।"

"सब ठीक है। मैं आपको बताऊं मुझे किसने मारा था?"

"मुझे मालूम है, पर आपको नींद आई, नगेन बाबू?"

"खूब आई, डॉक्टर। अच्छा कौन था वह?"

"हमीद। आपके सहपाठी का भाई।"

"वही डॉक्टर। मुझे पहचानते ही वह बोला, मारो काफिर को। मै नहीं जानता, मैं किधर भागा? कहा गिरा? कब यहां लाया गया? कैसी बात है? हजारों वर्षों से साथ रहते-रहते हम एक-दूसरे के लिए अजनबी बन गए है। या मानो जितना जानने जाते है, उतनी ही खून की प्यास बढती जाती है।"

डॉक्टर बोला, "बोलने से आपका सिर नही दुखता? आप जरा और सो ले।"

नगेन ने कहा, "हिंदुस्तान में रहने वालो के सिर नही होता, डॉक्टर, आप इतना भी नहीं जानते? देखो न, भाभी को हम मा के समकक्ष भी मानते हैं और आधी पत्नी

के रूप मे भी। हमारे अतर मे जो शाश्वत हिसक पशु छिपा बैठा हे, उसे नष्ट करने की जरा भी चिंता नहीं करते, न चिंता करते हैं आर्थिक-सामाजिक विषमता को दूर करने की। बस, कभी हिंदू-मुसलमान-सिख कभी ब्राह्मण-अछूत न जाने कितने और कैसे-कैसे मुखौटे लगाकर उस हिंसक पशु को पुचकारते रहते है ''

वह जैसे थक गया हो, एक क्षण रुका, पर डॉक्टर पूरे समय स्तब्ध उसे देखता ही रहा। वही फिर बोला, ''अच्छा डॉक्टर, वे लोग कब आ रहे है?''

''अभी देर है।''

''देर है!'' इतना कहकर नगेन ने फिर नेत्र बद कर लिए। दूर तक सन्नाटा ही सन्नाटा था। कभी-कभी न जाने कहां से कोयल कूकने लगती थी। कभी-कभी कोई मरीज 'हाय-हाय' कर उठता था। डॉक्टर चुपचाप टहलते रहे। दवा का वक्त आने पर भी उन्होने नगेन को नहीं जगाया।

रोज की तरह प्रकाश की किरणें एक-एक करके जाने लगीं। संध्या का अधा प्रकाश उनके स्थान पर दखल जमाने आ पहुचा। खिडकी से झांककर डॉक्टर ने देखा, नगर की ओर जाने वाली सडक बिलकुल सूनी है। बारी-बारी पुलिस के दो सिपाही पैर मिलाए उस ओर आते है और चले जाते हैं। बूट की आवाज सूने मे गूजती रहती है। सगीन उनके कंधो पर है। एक-दूसरे की ओर देखकर वे मुसकरा उठते हैं मानो उन्हे भय नहीं है। वे स्वय भय है।

तभी सुना, कोई उन्हें पुकार रहा है, ''डॉक्टर साहब, डॉक्टर साहब।''

''कौन है?'' उन्होंने मुडकर पूछा।

''क्या नगेन्द्र राय यहीं है?''

''हो सकते हैं, पर तुम कौन हो?''

''मेरा नाम वहीद है। नगेन बाबू की भाभीजी आई हैं।''

डॉक्टर ने उसे ध्यान से देखा और बोले, ''उन्हें यही बुला लो।''

वह नगेन की भाभी थीं—नितांत निश्चिंत, वातावरण के प्रभाव से एकदम अछूती और ममता की मानो साकार प्रतिमा।

डॉक्टर ने पूछा, ''आप नगेन बाबू की भाभी है?''

''जी हा। क्या उनकी हालत चिंताजनक है?''

''थी, पर अब नही है।''

''मै उनके पास जा सकती हूं?''

''जा सकती है, पर जरा ठहरकर। वे सो रहे हैं ..आप अकेली है?''

''जी हां, उनके भइया बबई गए हुए हैं।''

''आप डरीं नहीं?''

''डर ही तो मुझे यहां खींच लाया है, डॉक्टर साहब। इस बडे डर के सामने मार्ग के सब डर मैं भूल गई।''

''लेकिन यह वहीद कौन है?''

''आज इसने मेरी रक्षा की, डॉक्टर साहब।''

''क्या कहती है आप? आप पर हाथ उठाया इन लोगो ने?''

''जी हा, पर वे लोग मेरा खून नही चाहते थे।''

''तब ''

''आप नहीं जानते डॉक्टर, मैं कितनी सुदर हूं। फिर काफिर। क्या यह कम दोष है मेरा?''

डॉक्टर हतप्रभ उनकी ओर देखता रहा—क्या ऐसी औरते भी इस देश मे है? कैसे निर्भय-निडर सब सुना रही है.

तभी नगेन जागकर बोला, ''डॉक्टर साब, वे लोग आ गए?''

डॉक्टर ने उसके पास आकर कहा, ''अब जी कैसा है?''

''डॉक्टर साब, मैने एक विचित्र सपना देखा है, सुनोगे. ? मैंने देखा—भाभी पर कई व्यक्तियों ने एक साथ हमला कर दिया। पर वे डरी नहीं। खड़ी रहीं—अचल पर्वत की तरह। तभी न जाने कहां से आकर आकाश के एक देवता ने उनकी रक्षा की लेकिन. .''

''लेकिन क्या, नगेन?''

''डॉक्टर, वह देवता मुसलमान था। क्या यह भा संभव है?''

''संभव नहीं, नगेन, यह सच है।''

''सच है? तब. तब भाभी कहां हैं?''

उसी क्षण नगेन ने देखा कि भाभी सचमुच उसके सामने खड़ी है। वह फुसफसाया, ''भाभी..''

भाभी चुपचाप उसके पास आकर बैठ गई और उसका हाथ अपने हाथ मे लेकर उसे सहलाती रहीं या शायद उमडते आंसुओं से लडती रही। कुछ थमकर बोलीं स्नेह पगे स्वर में, ''जी कैसा है, नगेन?''

''अच्छा है, भाभी।''

''तुम्हें चोट अधिक लगी थी क्या, भइया?''

''वह बात बीत गई, लेकिन तुम्हें भी क्या उन्होंने मारा था?''

भाभी हँसी विद्रूप से, ''मुझे कौन मार सकता है, अबला हू मैं।''

नगेन भी हँसा, ''तब सबल ही मरने के लिए हैं, भाभी?''

''शायद।''

''लेकिन यह कौन है?'' उसने वहीद को देख लिया था।

''यह वहीद है। यही मुझे यहां ले आया है।''

''तब तब मेरा सपना सच्चा था। उन्होंने तुम पर आक्रमण किया, भाभी। मै सब देख रहा था। इसी ने तुम्हें बचाया है न?''

और वह वहीद से बोला, ''वहीद!''

''जी।'' वहीद ने चौंककर कहा। वह अपने किसी खयाल में मस्त वहीं बैठा

था। डॉक्टर मेज पर झुके हुए चार्ट लिख रहे थे। उन्हे पूर्ण विश्वास था कि सकट टल चुका है।

नगेन ने कहा, "वहीद भाई, तुम मुसल्मान हो?"

"हा, इसके साथ मै और भी कुछ हूं।"

"वह क्या?"

"मलेच्छ और अगर मैं कहूं कि मै सिर्फ मलेच्छ हूं तो ज्यादा ठीक होगा।"

"शायद उसी तरह जैसे हम काफिर है!"

"बिलकुल ऐसे ही, भाई।"

"लेकिन तुमने इस काफिर की रक्षा कैसे की?"

वहीद गभीर हो आया, "मै भी यह सोचता हूं, लेकिन जब ये घिर गई तब मैने देखा— मां बिलकुल भी नहीं डरी हैं। इनकी उस बेखौफी की वजह से ही मैं यह कसूर कर बैठा।"

नगेन बोला अचरज से, "कसूर कहते हो तुम इसे?"

"हां भइया, दीन के बदो के लिए यह कसूर है। मुसलमान होकर मैने काफिर का साथ दिया, यह गुनाह नहीं है क्या?"

"गुनाह " नगेन और भी विस्मय से भर आया।

भाभी ने कहा, "नगेन, एक के लिए जो पुण्य है, दूसरे के लिए वही पाप हो सकता है, इसमें विस्मय की बात क्या है। विषमता इस दुनिया की विशेषता है।"

"लेकिन भाभी," नगेन बोला, "जो पाप है, जो बुरा है वह क्या सब के लिए एक नहीं है?"

"नहीं, वह एक नहीं है।" भाभी ने दृढता से कहा, "और तुम जानते हो, ऐसा क्यों है? युग-युग के संचित संस्कारो ने हमारी चेतना को लील लिया है।"

डॉक्टर चुपचाप भाभी की ओर देख रहे थे। अब बोले, "नगेन बाबू, ये ठीक कहती हैं। मैं डॉक्टर हूं, लेकिन अपने अंतर मे मुसलमान की अपेक्षा हिंदू के लिए अधिक अधीर हो उठता हूं। जानता हूं, यह पाप है, फिर भी पुण्य मानकर इसे करता हू "

नगेन ने कहा, "डॉक्टर साब, मैं कुछ नहीं समझ पा रहा। मुझे करवट लिवा दीजिए और आप जा सकते हैं। अब मुझे भय नहीं है।"

फिर वहीद की ओर मुडकर वह बोला, "वहीद, तुमने जो कुछ किया उसके लिए हम लोग आजन्म तुम्हारी आभारी रहेगे। अपनी फैलाई हुई इस विषमता की यदि एक भी कडी हम-तुम तोड सकें तो मनुष्य का कल्याण ही होगा।"

और उसने वहीद का हाथ अपने ओठो पर रखकर चूम लिया।

न जाने क्यों वहीद सिहर उठा। उद्विग्न होकर उसने कहा, "मै अब भी नही जानता मैंने क्या किया। मेरे खुदा..!"

वह आगे न बोल सका। उसकी आंखें भीग आई थी।

ये बंधन

साडी का पैकेट लेकर अनीला जैसे ही जाने के लिए उठी, देखा—सामने की बेंच पर एक मुस्लिम युवती बैठी है। नकाब के भीतर से झाकती उसकी लबी-लंबी आखे कौतुहल से पूर्ण हैं और लाल-लाल ओठो पर मीठी मुसकराहट झलक रही है। उसने सोचा—मैंने इस सुंदर मुख को कही देखा है, पर कहां

छोटा भाई प्रदीप साथ आया था। बोला, "चलो न, जीजी। उधर क्या देख रही हो? कुछ है क्या?"

"है तो।" कहकर अनीला उधर ही बढी। तब प्रदीप ने देखा—सामने जो मुस्लिम युवती बैठी है वह शीघ्रता से उठी और अनीला के पास आकर इस प्रकार खडी हो गई मानो उसमे समा जाना चाहती हों। अनीला ने उसका हाथ अपने हाथ मे ले लिया और दबाकर बोली, "सोच रही थी. इस सुंदर मुख को कही देखा है। तू तो सुरैया, इतना बदल गई है।"

"सच!"

"हा। क्या खाती है?"

सुरैया मद-मंद हँसती हुई बोली, "मैं क्या खाती? मुझे तो तुम जरा भी नही भूलीं। अपनी बात कहो जो पुरानी सहेलियो को भी नही पहचानती।"

"सच सुरैया, नही पहचाना। तू अब वह कहां है? तेरी आखो में न जाने क्या भरा है?"

सुरैया ने हाथ दबाकर कहा, "सच?"

"जान पडता है, शादी हो गई है।"

सुरैया ने गरदन हिला दी।

"तभी तो। और कहती है, मै क्या खाऊंगी?"

सुरैया हॅस पडी। उनके चारो तरफ भीड थी, युवक और युवतियां, स्त्री और पुरुष, वृद्ध और बालक, नाना जाति के। कुछ उन्हे देखते और आगे बढ जाते, वे व्यस्त थे। कुछ दृष्टि गड़ाकर देखने लगते। प्रदीप सोचने लगा, यह कौन है।

सुरैया ने पूछा, "तुम अभी तक पढ रही हो?"

"हां।"

"कौन-सी क्लास मे?"

"एम.ए।"

"ओह, एम.ए ! क्या करोगी इतना पढकर?"

"पढकर कुछ करना होता है?"

"और क्या नही?"

"पता नही, सुरैया। पर हां, तू क्या अकेली है?"

"नहीं, वे है।"

"दूल्हा भाई।"

"हां, हां।"

"अरी बता तो कौन-से हैं?"

"वे, उधर—नीली धारी की कमीज और सफेद पैंट पहने हैं।"

"ओ!" अनीला ने उधर देखा और मुसकराई, बोली, "जोडी खूब मिली है। बधाई। कैसे है?"

"सब यही पूछ लोगी? तुम्हारे साथ कौन है?"

"छोटा भाई है। हां, सुरैया, मेरे साथ चलो।"

"अभी।"

"कुछ हर्ज है?"

"नहीं तो, पर बुलाओगी तो फिर किसी दिन आऊंगी। अब तो "

"अब तो क्या?"

सुरैया का स्वर सहसा धीमा पड गया। बोली, "सदा वे ही अल्हड़ दिन नही रहते। अब तो चारों तरफ देखना होता है। इतनी देर हो गई, न जाने क्या कहते होंगे। जाऊं?"

अनीला को हँसी आ गई, "बड़ी डरपोक है तू, सुरैया। इतनी जल्दी।"

"बुलाना तब बताऊंगी।"

"घर तो बताती जा?"

"कूचा रहमान, नबर 717।"

"नाम?"

सुरैया पास जाकर कान में फुसफुसाई, "मिस्टर अरशाद नासरी।"

सुरैया चली गई। अनीला मुडी। उसके मस्तिष्क में तब अनेक चित्र उठे और गिरे। लखनऊ में उन दोनों ने एक साथ मैट्रिक पास किया था। सुरैया वकील की लडकी थी—बहुत चंचल और दबंग। वैसे पढ़ने में अच्छी थी, परतु हिसाब मे बहुत कमजोर थी। अनीला सदा अव्वल आती थी। इसीलिए सुरैया को बार-बार अनीला की शरण लेनी पडती थी। यद्यपि समय के अभाव में यह जान-पहचान बहुत गहरी तो नही हो सकती थी, परंतु उसमें प्यार का अभाव भी नहीं था। आज अकस्मात् इस प्रकार मिल जाने पर वही प्यार गहरे मिठास से भर उठा। सामीप्य मे अलगाव, और दूरी मे अपनापन होता है न! इसीलिए अगले दिन जब अनीला ने अपनी महाराजिन को तांगे के

साथ भेजा तो सुरैया मना नहीं कर सकी। सच तो यह है कि वह बुलावे की राह देख रही थी। इसके लिए उसे अपने मालिक से भी रूठना पडा था।

''कौन थी वह?'' अरशाद ने घर लौटकर पूछा, ''बडी घुट-घुटकर बात हो रही थी।''

सुरैया मुसकराई, ''पुरानी सहेली है। लखनऊ में साथ पढ़ती थी।''

''किसकी लडकी है?''

''बाबू रामकिशोर की, वही जो मशहूर वकील हैं। कांग्रेस में काम करते हैं। आजकल एम ए में पढ रही है।''

''सच।''

''जी हां। जेल हो आई है।'' सुरैया बोली, ''हमारी तरह थोडे ही है जो हमेशा किले में बंद रहती है।''

मुसकराकर अरशाद ने कहा, ''आजादी बडी खतरनाक होती है, बेगम।''

''क्या मतलब?''

''मतलब भी बताना पड़ेगा।'' अरशाद ने उसी तरह कहा, ''जो लडकिया इस तरह आजाद घूमती है, उनका दिल बश मे नहीं रहता।''

सुरैया ने शरारत से अरशाद की ओर देखकर, कहा, ''मर्दो को हर तरफ दिल का सौदा नजर आता है। मगर उसके लिए भी क्या परदे और बेपरदे का फर्क है? वह तो परदे के अंदर भी उतना ही मचलता है, जितना बाहर, बल्कि परदे मे उसे ज्यादा आजादी रहती है।''

चोट खाकर अरशाद तिलमिला उठा। झेंप उतारने के लिए उसने कहा, ''तुम्हें तो बहुत बातें करनी आ गई हैं, बेगम। आखिर तुम्हारे वालिद भी तो वकील थे।''

''जी हा, थे।''

''और सुना, तुम्हें एक हिंदू मास्टर पढाने आते थे।''

सुरैया हँस पड़ी, ''हां, आते थे, बेचारे। बीच में परदा होता था। उसी के पार बैठकर वह सवाल समझाते थे और मै स्लेट पर हल करके बाहर रख देती थी।''

अरशाद हँसा, बोला, ''परदे में कोई सूराख नहीं था?''

''था।''

''उसमें से झांकती थीं?''

''हा।''

''अच्छे लगते थे?''

''हटो भी।'' सुरैया ने विद्रूप से कहा, ''क्या बातें सूझती हैं तुम्हें। जो बात छिपाई जाती है उसको देखने के लिए सभी का मन करता है। मुझे तो वे बातें सोचकर अब भी बडी हँसी आती है। कैसे-कैसे कानून बनाए हैं आप लोगों ने, बाप रे। कभी-कभी तो ऐसा मन करता है इस बुरके को फाडकर फेंक दूं।''

फफ फ न

आप कह दो बस

मैं कह दू तुम क्या बुजदिल हो?

सुरैया ने अरशाद की आखों मे अपनी आखे डाल दी और धीरे से कहा "बुजदिल तो नहीं हू पर मेरी ताकत तो आप ही है, मेरे मालिक।"

अरशाद को यह अदा बडी प्यारी लगी। उसने सुरैया को छाती से लगाकर चूम लिया। फिर कहा, "एक दिन सब रुकावटे दूर होंगी पर तब जब मेरी ताकत तुम बनोगी।"

सुरैया ने कहा, "वह तो मैं अब भी हूं।"

"कहने-भर को, वरना "

सुरैया चोट खाकर तड़प उठी। परतु दूसरे ही क्षण उसने संभलकर कहा, "हा, अनीला मुझे बुला रही थी। चली जाऊ?"

"मैं क्या जानू?"

"और कौन जाने?"

"सुरैया, बात यह है ." और आगे अपने भाव व्यक्त करने के लिए शब्द ढूंढने में असमर्थ अरशाद ने सुरैया को देखा। आंखें मिलीं। सुरैया का मन और भी पस्त हो गया, बोली, "आप नहीं चाहते तो नही जाऊंगी।"

"सुरैया, बात यह है . "

"बात मै जानती हू। मुसलमान औरत घर की चारदीवारी से बाहर जाने के लिए नही होती, यही न?" कहकर वह धम-धम करती हुई चौक में चली गई। तभी भिश्ती ने पुकारा, "पानी ला रहा हूं, जी, परदा कर लेना।"

सुरैया फिर कमरे मे लौट गई। अरशाद ने चुपचाप जाकर किवाड़ खोले। भिश्ती ने सलाम झुकाकर पानी भरा और चला गया। सुरैया बाहर जाकर घर का काम देखने लगी। आजकल नौकर के अभाव मे नवाबों के लिए भी शान रखना मुश्किल हो रहा है। उनकी तो बात ही क्या थी। किसी तरह काम चल रहा था। रोटी पकाना, बरतन मलना, झाडना-बुहारना, सभी कुछ सुरैया अपने-आप करती थी। अब भी चुपचाप बावर्चीखाने मे पहुची और शाम के खाने की तैयारी करने लगी, पर मन उसका भारी था। आंखें आंसुओं से पूर्ण थीं। कोहनी से उन्हें पोंछकर उसने सालन उठाया। तभी अरशाद ने पास आकर कहा, "बेगम।"

"... "

"सुरैया, रूठ गई?"

".. "

"सुरैया, मेरा यह मतलब नहीं था। चली जाना अच्छा।"

"मै नहीं जाऊगी।"

''सुरैया . ''

''मैं नहीं जाऊंगी, मैंने कह दिया।''

पर यही सुरैया जब अनीला की महाराजिन ने आकर कहा, 'आपको अनीला बीबी ने बुलाया है,' तो खुशी से नाच उठी। बोली, ''मैं तो राह देख रही थी। बैठो, अभी चलती हूं।''

अनीला दरवाजे पर खडी हुई थी। सुरैया को देखकर हँसती-हँसती आगे बढी, ''तुम आ गई, सुरैया!'' उसने कहा, ''मै तो समझी थी तुम्हारे 'वे' नही आने देंगे।''

सुरैया ने सबसे पहले नकाब उठाकर देखा—अनीला अकेली है। तो बुरका उतारकर एक कुरसी पर फेंक दिया, हँसकर बोली, ''उफ! अब जान-में-जान आई है। या खुदा, कितनी गरमी है!''

अनीला ने पंखे को उसकी ओर घुमा दिया, कहा, ''बडी गरमी लगती है।''

''गरमी क्या है जैसे फिर नहीं पड़ेगी।''

अनीला बोली, ''यह तो हमेशा ही पडेगी पर हम हमेशा नहीं रहेंगे। शरबत पियोगी?''

''जो पिला दो।''

अनीला ने पुकारकर कहा, ''महाराजिन, शरबत ले आना जरा।''

सुरैया को हवा लगी तो उठकर कमरे को देखने लगी। सामने किताबों की अलमारी थी, बोली, ''इतनी किताबें हैं। बडा पढ़ती हो, अनीला?''

''तुम्हारा जी करता है?''

''हमारा क्या जी?'' सुरैया ने दुःख से कहा, ''न जाने इतना भी कैसे पढ गए। अब्बा की हिम्मत थी, नही तो अम्मी हमेशा कहा करती थी, 'हम क्या हिंदू है जो अपनी लडकियों को पढा-लिखाकर आजाद कर दें। हमारी लड़कियां तो बुरके में बद रहती हैं।' और सच भी है, अनीला। क्या हुआ पढ़कर? वही बावर्चीखाना, वही झाडू-बुहारी। कभी अखबार तक नहीं मिलता पढने को।''

महाराजिन शरबत ले आई। एक गिलास सुरैया को देकर अनीला बोली, ''बात तुम ठीक कहती हो, पर तुम्हारी क्यों, हर कहीं यही हालत है।''

''नहीं अनीला!'' सुरैया ने एक सांस मे आधा गिलास खाली करने के बाद कहा, ''तुम लोग आजाद हो। देखो न पढे जा रही हो। मैं तो पढ लू भला!''

''पर सुरैया, सभी हिंदू ऐसे नही है।''

''सभी तो कहीं भी एक-से नहीं होते।'' सुरैया ने जवाब दिया, ''पर फिर भी तुम्हे याद है न शीला थी हमारे साथ। कितनी गरीब थी, पर पढे जा रही थी। फर्स्ट आती थी।''

अनीला हँसी, ''शीला गुप्ता?''

''हा।''

''वह अव तीन बच्चो की मां है।''

''सच? मियां क्या करते है?''

''जी.एच क्यू. में है।''

''बस?''

''हां, सुरैया।''

''कैसी होशियार लडकी थी! मास्टरनियां हाथों पर रखती थी। हर मजमून मे अव्वल। तो भई, हमें अफसोस नही। किसी तरह पास हुए थे। भई, तुम जमीला को जानती होगी न?''

''हां, हां, क्यो।''

''बेचारी का इंतकाल हो गया।''

''कैसे. ?''

''मरा बच्चा हुआ था।''

अनीला का दिल धक-धक कर उठा। बोली, ''बडी गरीब लड़की थी।''

''हां, अनीला।'' सुरैया ने दर्द-भरी वाणी में कहा, ''गरीबी ही उसे खा गई। आजकल की महंगाई तुम जानती ही हो। गरीब को ठीक-ठीक दवा भी नहीं मिली। मरने से पहले पागल हो गई थी।''

''ओह, परमात्मा! सच?''

''हा, अनीला। बेचारी तीन बच्चे छोड गई है। वे भी मर जाते तो अच्छा था। कौन उन्हें संभालेगा, बशीर मियां कह रहे थे—खुदा की मरजी है। अब भी जो ठीक होगा, करेगा। पर अनीला, मुझे तो मालूम होता है, खुदा कुछ नहीं करता।''

''बेशक, सुरैया।'' अनीला बोली, ''खुदा कुछ नहीं करता। करता तो आदमी है। अपने ऐब छिपाने के लिए वह खुदा की आड लिया करता है। लेकिन, सुरैया, तुमने नहीं बताया .''

''क्या?''

''तुम्हारी गोद खाली है।''

सुरैया की आंखें सहसा गीली हो गई। गहरी सास खीचकर बोली, ''अनीला, एक लडकी हुई थी, पर तीन महीने की होकर चल बसी। बडी प्यारी थी।''

''औलाद प्यारी ही होती है।'' अनीला ने सहानुभूति से भरकर कहा, ''पर दुखी क्यों होती हो? और भी ''

बात काटकर सुरैया बोली, ''अच्छा अनीला, तुम्हारा मन नहीं करता?''

''काहे को?''

''जैसे जानतीं नहीं!''

अनीला मुसकरा पडी और सुरैया के ऊपर झुकती-झुकती बोली, ''जानती क्यो नहीं! और मै बताऊं, मन करता भी है।''

"फिर शादी क्यो नही करती?"

"मन करता है तो क्या शादी कर लेनी चाहिए? मन जिस काम को कहे, वह क्या सभी किया जाता है?"

सुरैया को यह दार्शनिकता अच्छी नही लगी, बोली, "अनीला, औरत तो आखिर शादी करती ही है।"

"न करे तो?"

"यह कैसे हो सकता है? नहीं करेंगी तो इधर-उधर ."

इसी समय बाहर शोर मचा। बच्चो की किलकारियां और बूटों को आवाज पास आने लगी। सहसा सुरैया कूदकर उठी। शीघ्रता से उसने बुरका उठाया और नकाब डाल ली। पलक मारते ही यह सब हो गया। अनीला ने चकित होकर देखा—प्रदीप अदर चला गया है। समझकर वह खिलखिलाकर हँसी, बोली, "सुरैया, यह तो प्रदीप था, मेरा छोटा भइया।"

सुरैया ने अब नकाब पलटा। यद्यपि अस्तव्यस्त हो रही थी, पर मुसकरा पडी। शरारत से बोली, "हम लोगों के सिर्फ मां-जाया भाई होता है।"

"पर," अनीला ने कहा, "तुम्हारी तो शादी हो चुकी है।"

"हां, यह तो ठीक है, लेकिन आदत पडी हुई है।"

"भई, ऐसी भी क्या आदत?"

"सच अनीला। बहुत बार जी करता है, इस बुरके को फाडकर फेंक दूं, पर हाथ उठते-उठते रुक जाते हैं।"

तब तक बच्चे अंदर आ गए थे। दस वर्ष की लंबी, सुंदर प्रमीला और पांच वर्ष का गोलमटोल कुलदीप। सुरैया को देखकर दोनो ठिठक गए। अनीला ने कहा, "नमस्ते करो, जीजी है।"

प्रमीला ने हाथ जोडकर लजाते हुए कहा, "नमस्ते।"

सुरैया ने उसे प्यार से थपथपाया। इधर कुलदीप महाशय अनीला के पास जाकर बोले, "जीजी! ये कौन हैं?"

"जीजी।"

"कौन-सी? कानपुर वाली?"

"ना, ना। ये तो यहीं रहती है।"

"अब तक क्यों नहीं आई थीं?"

"घर का पता नहीं था।"

"अब कैसे लगा?"

सुरैया को अटपटी बोली मे उसके प्रश्न बडे प्यारे लगे। बोली, "हमारे पास आओ।"

"नही आते।"

अनीला ने तीव्रता से कहा, ''ना कुलदीप, ऐसे नही कहते। बड़ी जीजी है।''

कुलदीप मुह बनाकर बोला, ''बडी जीजी कैसे है, हमारे लिए चीजी तो लाई नही।''

सुनकर अनीला और सुरैया खिलखिलाकर हँसीं। फिर अनीला ने कहा, ''अच्छा, अच्छा महाशय! जाओ देखो, खाना बना कि नहीं। तुम भी जाओ प्रमीला। अम्मा तो आ गई न?''

''हा, रसोई में है।''

तभी सुरैया चौककर बोली, ''अरे, तुम्हारी अम्मा जी से तो मिली नही।''

अनीला ने कहा, ''वे रसोई मे चली गई हैं। खाना उन्हें अपने हाथ से बनाना अच्छा लगता है। मैं बुलाती हू।''

''नहीं, मैं ही चलती हूं। मुझे तभी जाना चाहिए था।''

''अरे, बैठो भी।''

''ऊहू। बैठकर क्या करूगी?'' सुरैया बोली, ''तुम्हारी रसोई देखूंगी। वे कहते थे, हिंदुआनियां सब्जी बडी अच्छी पकाती हैं। कई बार वे हिंदू दोस्तो के घर जाकर खाते हैं.. देखूंगी, तुम लोग आखिर क्या करती हो?''

अनीला हँस पडी पर दूसरे ही क्षण सहसा जैसे मन मुरझा गया। हँसी रुक गई। उसने कहा..

पर सुनने को सुरैया वहां नही थी। वह शीघ्रता से कमरे से बाहर चली गई। देखा, आगन मे सामने जो पक्की रसोई है उसी मे अनीला की मा बैठी हैं। वह कढाई मे पूरियां तल रही हैं। पास दूसरी अगीठी पर सब्जी पक रही है। जिसकी सोधी-सोधी सुगध चारो और फैली है। सब कहीं स्वच्छता, सब कहीं सामान समुचित रूप से रखा है। क्षण-भर मे सुरैया ने सब कुछ देख डाला और शीघ्रता से रसोई में अम्माजी के पास पहुचकर कहा, ''अम्माजी, सलाम।''

जैसे भूकंप हुआ। अम्माजी हठात् कांप उठीं। दृष्टि उठाकर सुरैया को देखा। हाथ से कौचा झनझनाता हुआ धरती पर गिर पडा। वह लडखड़ाती हुई उठीं। कढाई मे ठेस लगी, वह उलट गई, तपता हुआ घी चारों ओर बिखर गया और देखते-देखते वे चीखकर वहीं गिर पडीं।

सुरैया बराबर रोए चली जा रही थी। उसकी हिचकियां बंद ही नहीं होती थीं। दुखी ओर त्रस्त अनीला ने बहुत समझाया। उसकी आंखों पर अपना मुह रखकर उसे प्यार से थपथपाती हुई बोली, ''मेरी अच्छी, सुरैया। मेरी प्यारी बहन, चुप कर ..''

सुबकते-सुबकते सुरैया बोली, ''अनीला, गलती मेरी थी। मै रसोई में क्यों गई? मेरी वजह से अम्माजी..''

''चुप-चुप, सुरैया!'' अनीला ने उसके गले में बांह डाल दी, ''अम्माजी को

कुछ नहीं हुआ है। जरा पैर जल गया है, बस। सुरैया! सुरैया! तुझे मेरी कसम। तू यह बात भूल जा। मै कल तेरे पास आऊंगी। कल ही सबके साथ हम मिलकर खाना बनाएंगे और मै तुझे तरह-तरह से सब्जी बनाना बताऊंगी। ले बस, चुप हो जा। तू मेरी बहन है न?"

सुरैया ने किसी तरह अपने को शांत किया। उसकी आंखे लाल हो रही थीं। मुख मुरझा गया था और दिल दुःख से फटा पडता था। यह किसी भी तरह वहां से भाग जाना चाहती थी। अनीला भी कम दुखी नहीं थी, पर ऊपर से वह शात थी। उसने सुरैया को छाती मे भर लिया और हँसकर बोली, "जो भी हो, तुम्हें शांत होना होगा, मेरी बहन। मेरी लाज तुम्हारे हाथों में है।"

सुरैया ने धीरे से कहा, "मैं ठीक हूं।"

"तो हँसो।"

" . "

"हँसो, मेरी प्यारी बहन।"

सुरैया हँस पडी। उसकी वह सजल मुसकराहट अनीला ने हँसकर उसे चूम लिया।

तभी बाहर जूतों की आवाज हुई। अनीला के पिता अस्पताल से लौट आए थे। उन्होंने मुसकराते हुए कहा, "अनीला बेटी, तुम्हारी मां ठीक हैं। रात तक लौट आएगी। कहलाया है, सुरैया को तब तक न जाने देना।"

मेरा बेटा

सिविल अस्पताल का नया सर्जन डॉक्टर हसन जैसे ही कमरे में दाखिल हुआ, उसने किवाड बद कर लिए। ठडी हवा का झोका, जो साथ-साथ अदर घुस आया था, क्षण-भर के लिए उसके पिता को कपाता हुआ गायब हो गया। डॉक्टर ने एक गहरी सांस खीची और हाथ के दस्ताने उतारते हुए कहा, ''अब्बा! बडी खतरनाक हालत है!''

अब्बा जो पलग पर लेटे थे, 'हू' करके रह गए। डाक्टर ने चुपचाप ओवरकोट उतारा और खूटी पर टांग दिया, फिर अंगीठी के पास जा खडा हुआ। बाहर सनसन करती हुई हवा चल रही थी और उस ठड को, जिसके थपेडें खाते हुए वह अभी लौटा था, याद करके उसे अब भी कंपकंपी आ जाती थी। एकाएक अब्बा बोल उठे, ''अब तक कितने आदमी मर चुके होंगे?''

डॉक्टर ने जवाब दिया, ''अस्पताल में कुल तीस लाशें आई हैं।''

''और जख्मी?''

''सौ हो सकते है।''

''मुसलमान ज्यादा होंगे?''

डॉक्टर क्षण-भर रुका, फिर हाथों को मलता हुआ बोला, ''कुछ नहीं कहा जा सकता।''

''फिर भी?''

वह झिझका जैसे कुछ सोचना चाहता हो। अब्बा तब तक उसके मुह की तरफ देखते रहे। उसने हाथो को आग के आगे किया और कहा, ''हो सकता है, हिंदू ज्यादा हों।''

फिर कई क्षण कोई नहीं बोला। सिर्फ हवा दरवाजे पर थपेडे मारती रही। अब्बा के मुख पर अनेक भाव आए और गए, उनके तने हुए चेहरे की नसें और भी तन गई। एकाएक बैठे-बैठे उन्होंने कहा, ''तो कोई उम्मीद नहीं?''

''किस बात की?'' हसन ने चौंककर पूछा।

''फैसले की।''

''फैसला?'' डॉक्टर जबरदस्ती मुसकराया और फिर जोश में बोला, ''अब्बा! हजार साल इस तरह लड़ते रहने पर भी फैसला नहीं हो सकता। असली बात यह है कि वे फैसला करना ही नहीं चाहते, वे लडना चाहते हैं और लड़ते रहेंगे, इसीलिए वे एक-दूसरे की बात समझने से इनकार करते है।''

"इनकार करते है?"

"हा अब्बा, मैं तो इसे इनकार मानता हू। समझना चाहे तो झगडा ही क्या?"

अब्बा ने एक बार अपने बेटे को देखा, फिर कहा, "शायद तुम ठीक कहते हो।"

"शायद नहीं अब्बा, मै बिलकुल ठीक कहता हू।"

तभी किसी ने दरवाजा खटखटाया। डॉक्टर चौका।

पूछा, "कौन है?"

जवाब आया, "जी, अस्पताल मे डॉक्टर शर्मा ने आपको बुलाया है।"

"क्यों?"

"एक नया केस आया है, साब।"

"तो?"

"साब, उन्होने कहा है, जख्मी की हालत खतरनाक है, आपका आना जरूरी है।"

अब्बा ने सुनकर गुस्से से कहा, "क्या वाहियात बात है, अभी आए हो। खाना न पीना। मरने दो उसको।"

डॉक्टर बोला, "मरना तो है ही, अब्बा, आज मौत के फरिश्ते ने हम सबको अपने परो के साये में समेट लिया है।"

और फिर किवाड खोले, ठंडी हवा तेजी से अंदर घुसी। उसने कांपते हुए कहा "खाना खा सकता हू?"

आने वाला अस्पताल का जमादार था, सिकुड़ते हुए जवाब दिया, "साब, वह तो जल्दी बुलाते है।"

डॉक्टर ने लंबी सांस खीची, कहा, "अच्छा तो कह दो, अभी आता हूं।" और उसने जल्दी से किवाड बंद कर लिए। सीधे अंगीठी के पास आया और कहा, "खून जमा देने वाली सर्दी पड रही है, और वे लोग लडे जा रहे है, बहशी, हैवान, दोजखी, कुत्ते. " साथ ही साथ दस्ताने पहनता रहा, फिर ओवरकोट उठाया और चलते-चलते कहा, "मैं कहता हू, अब्बा, वे हैवान हैं। वे फैसला नहीं कर सकते।"

अब्बा अगरचे क्रोध में भरे हुए थे पर न जाने क्या हुआ कि हसन की बात सुनकर हँस पडे। बोले, "हैवान बड़ी जल्दी फैसला करता है, बेटे।"

वह कुछ जवाब देता कि इस बार अदर के दरवाजे पर आहट हुई। वह मुडा, देखा— सामने उसकी बीवी खडी है। उसने गरम शाल लपेट रखी है और उसके सुदर मुख पर क्रोध-भरी मुसकराहट है। पास आने पर वह कुछ नाराजी से बोली, "अभी आए और चल दिए, क्या मुसीबत है?"

"खुदा जाने, क्या होने वाला है, बेगम।"

"खाना नहीं खाओगे?"

कैसे खाऊं बुलावा आ गया है

बेगम के हाथ में कुछ बिस्कुट थे उन्हें डॉक्टर के आवरकोट की जेब में डालते हुए कहा चाय तो पी लेते

डॉक्टर मुसकराया, बोला, तुम बहुत अच्छी हो, बेगम।

और फिर उसके मुंह पर आई हुई एक लट को पीछे करते हुए वह जल्दी से मुड़ा और कहा, "अब नही रुक सकता, बेगम। देर हो गई तो शायद पछताना पड़ेगा।"

बेगम ने कुछ जवाब नही दिया, उसका सुदर मुखडा परेशानी से उदास हो गया था। दुखी मन से उसने डॉक्टर को जाते देखा और देखती ही रह गई। डॉक्टर दरवाजा खोलकर जल्दी-जल्दी कदम रखता हुआ बाहर निकल गया। बूटों की तेज आवाज के साथ सनसनाती हुई हवा एक बार तेजी से उठी और फिर धीमी पडने लगी। चटकनी लगाकर अब्बा फिर पलंग पर आ बैठे। तभी पास के कमरे से एक हलकी लड़खडाती हुई आवाज आई। डॉक्टर हसन के बाबा ने पूछा, "अनवर, हसन आया था.. अब फिर कहां गया?"

"अस्पताल।"

"क्यो?"

"क्यो क्या। कोई और जख्मी आ गया है। वे काफिर न जीते हैं, न जीने देते है।"

बात इतनी तल्खी से कही गई कि बाबा कुछ जवाब नहीं दे सके। नौकर पास बैठा था। उससे कहा, "जा, पूछ तो उसने कुछ खाया कि नही और कुछ न हो तो बिस्कुट वगैरा लेकर वहीं दे आ, जा ."

उधर डॉक्टर हसन जैसे ही अस्पताल में दाखिल हुआ, डॉक्टर शर्मा ने बेचैनी से कहा, "हसन। तुम आ गए, जल्दी करो, वह कमरा नबर 6 मे है। और आपरेशन का सामान तैयार है।"

हसन ने जरा शिकायत-भरे ढग से कहा, "ऐसी क्या बात है? खाना तक नही खाने दिया।"

"क्या करूं, हसन, हम लोगो का काम ही ऐसा है।"

"केस क्या बहुत सीरियस है?"

"हां, केस बहुत सीरियस है हसन, उसके बदन का कोई हिस्सा ऐसा नही है, जिस पर चोट न आई हो। चोट भी ऐसी है कि देखकर दिल कांप उठता है।"

"होश मे है?"

"आह, होश? मुझे अचरज है कि वह जिदा कैसे है?"

"क्या उसका जिंदा रहना जरूरी है?" हसन ने उसी तरह कहा, "उसके मर जाने पर क्या दुनिया मिट जाएगी?"

शर्मा बोला, ''मैं जानता हू, पर जब तक वह मर नहीं जाता, तब तक उसे जिंदा रखने का बोझ हम पर आ पडा है, क्या करें?''

वे चल रहे थे और बाते भी करते जाते थे। वे घायलो के वार्ड में दाखिल हो चुके थे और दर्द-भरी चीख-पुकार सुनाई पडने लगी थी। दरवाजा खोलते-खोलते हसन ने पूछा, ''यह है कौन?''

''एक बूढा हिंदू है।''

''यही का रहने वाला है?''

''नही, परदेशी है। जेब मे जो कागज मिले है उनसे पता लगता है कि वह कानपुर का रहने वाला है और उसका नाम रामप्रसाद है।''

हसन ने धीरे से दोहराया, ''रामप्रसाद, कानपुर, बस?''

''बस।''

उन लोगों ने कपडे बदले और फिर नर्सो और कपाउडरों से घिरे हुए उस जख्मी के ऊपर झुक गए, जो बीसों जख्म खाकर आपरेशन की मेज पर बेहोश पडा हुआ था। उसकी सांस बहुत आहिस्ता-आहिस्ता चल रही थी और अधखुली आंखे दिल में डर पैदा करती थीं।

आपरेशन खत्म करके जब वे बाहर निकले तो पूरे पांच घंटे बीत चुके थे। वे बेहद थके हुए थे और उनके तमाम बदन मे दर्द हो रहा था। वे उस हवा मे इतने डूब चुके थे कि दूर तक साथ-साथ चलते रहने पर भी वे एक-दूसरे से नहीं बोले। शाम हो चुकी थी, पर हवा की सनसनाहट उसी तरह गूंज रही थी। उसके थपेडे खाकर वे कभी कोट का कालर ठीक करते, कभी कदम तेज करके गरमी पैदा करना चाहते। उसी वक्त एकाएक डॉक्टर शर्मा ने धीरे से कहा, जैसे नींद में बड़बडाते हों, ''कैसा अजीब केस है!''

डॉक्टर हसन ने भी धीरे से कहा, ''पर मुझे खुशी है, हम उसे बचा सकेंगे।''

''शायद।''

''नहीं, शर्मा,'' हसन ने पूरे भरोसे से कहा, ''मुझे यकीन है, वह बच जाएगा।''

डॉक्टर शर्मा ने हसन की ओर देखा, फिर मुसकराकर कहा, ''तुम्हें यकीन है, क्योंकि तुमने उसके लिए परिश्रम किया है।''

''वह केस ही ऐसा था, उसे देखकर मुझे लगा कि इसे बचाना चाहिए. ''

''क्योंकि उसके बचने में तुम्हारी विद्या का इम्तहान है।''

डॉक्टर हसन ने एकाएक डॉक्टर शर्मा को देखा, उसे जान पडा कि वह ठीक कह रहा है, केस जितना खतरनाक था, उसको बचाने का खयाल भी उतना ही ज्यादा था।

यह जानकर डॉक्टर हसन को गहरा संतोष हुआ और उसने खुश होकर कहा, ''मेहनत तो तुमने भी की है, शर्मा!''

पर तुम्हारी तरह नही

हसन ने इस बात का जवाब नही दिया, पहले की तरह चुपचाप चलता रहा। उसका घर सामने दिखाई पड रहा था। उसी को देखकर वह बोला, "मै समझता हूं, घर जाने से पहले तुम एक प्याली चाय पीना पसंद करोगे।"

शर्मा ने मुसकराकर कहा, "जरूर करूंगा। सारा बदन टूट रहा है।"

हसन हँसा, बोला, "और इस बात की क्या गारटी है कि हमे अभी फिर उसी कमरे मे नहीं लौटना पडेगा?"

"हा, कौन कह सकता है?"

"लेकिन शर्मा, उस आदमी का पूरा पता मालूम होना चाहिए। देखने में किसी बडे घर का जान पडता है।"

शर्मा ने उसी तरह कहा, "मैंने पुलिस को पूरी रिपोर्ट दे दी है। वह पता लगा लेगी और न भी लगे तो क्या है, न जाने कौन-कौन मरता है।"

"वह नहीं मरेगा, शर्मा, उस पर आज मैंने बाजी लगाई है।"

शर्मा मुसकराया, "तब और भी जरूरत नही है।"

घर आ गया, किवाड़ खोलते हुए डॉक्टर हसन ने कहा, "बैठो शर्मा, मैं चाय के लिए कहता हू।"

और फिर अब्बा की ओर मुडकर कहा, "वाकई वह बडा खतरनाक केस था, लेकिन उम्मीद है कि वह बच जाएगा। शर्मा और मै अब तक उसी पर लगे थे।"

शर्मा ने हसन के अब्बा को आदाब अर्ज किया। जवाब देकर अब्बा बोले, "कौन है?"

"कोई बडा आदमी है।"

"एक बूढा हिदू है। अच्छे घर का जान पड़ता है।"

"यहीं का रहने वाला है?"

शर्मा ने कहा, "जी नही, परदेशी है। जो कागजात उसकी जेब में मिले हैं, उनसे पता चलता है कि वह कानपुर का रहने वाला है और उसका नाम रामप्रसाद है।"

अब्बा एकाएक चौंके, "क्या...क्या बताया...रामप्रसाद, कानपुर?"

"जी।"

"और कुछ?"

"जी नही।"

"उसके साथ कोई और नहीं है?"

"जी नहीं।"

हसन लौट आया था और अब्बा की बेचैनी को ध्यान से देख रहा था, बोला, "क्या आप उसे जानते है?"

अब्बा का चेहरा तन चला था और उनकी आंखो मे गुस्से की हलकी लकीरें

उभर आई थी। उन्होंने अनजाने ही तल्खी से कहा, "वह मरा नही है?"

शर्मा ने जवाब दिया, "मरने मे कुछ कसर तो नही थी. परंतु डॉक्टर हसन ने अपनी होशियारी मे उसे बचा लिया है।"

अब्बा ने अब हसन की तरफ गौर से देखा और देखते रहे। हसन को उनका यह व्यवहार बहुत अजीब-सा मालूम हुआ। उसने अब्बा के पास जाकर पूछा, "अब्बा! क्या आप उन्हे जानते है?"

जैसे बिना सुने उन्होने कहा, "रामप्रसाद कानपुर उसके मुंह पर दाई तरफ एक मस्सा है?"

"है।"

"उसका रंग गोरा है और उसकी शक्ल . "

"उसकी शक्ल?" हसन ने एकाएक अब्बा की तरफ देखा। जैसे बिजली कौंधी हो, आपरेशन करते समय उसके मन में यह विचार आया था कि इसकी शक्ल तो अब्बा से मिलती है। अब्बा उसी तेजी से बोले, "हां, मेरी तरफ देखो, उसकी शक्ल कुछ-कुछ मुझसे मिलती है?"

हसन कांपा, "अब्बा "

अब्बा अपनी सुध-बुध खो रहे थे। उनके चेहरे की झुर्रियों मे नफरत उभरती आ रही थी। उन्होंने जलती हुई आखों से हसन की तरफ देखा और कहा, "हा, मै कानपुर के रामप्रसाद को जानता हू और मैं उससे नफरत करता हू . "

हसन जैसे पागल हो चला था, "आप उससे नफरत करते हैं, क्यों..."

"हा, मैं उससे नफरत करता हूं और उसके मरने का मुझे जरा भी रंज नही है।"

वे बुरी तरह कापने लगे थे। उनकी आंखों में क्रोध और उत्तेजना के कारण पानी भर आया था। पर हसन को जैसे कुछ याद आ रहा था। कुछ, वह जो प्यारा होकर भी कड़ुवा था, जो उसके अब्बा की इस बेचैनी का कारण था। 'अब्बा की बेचैनी।' वह आहिस्ता से अपने-आपसे बोला, 'नहीं, यह केवल अब्बा की बेचैनी नही है, यह तो. .'

ठीक उसी समय अंदर के कमरे के किवाड भडभड़ाकर खुल गए। सबकी नजरे उस ओर उठीं। देखा—नौकर के कंधे पर हाथ रखे डॉक्टर हसन के बूढे दादा अंदर चले आए हैं। उनके बाल सफेद हो चुके थे और कमर झुक गई थी। उनके हाथ-पैर लड़खडाते थे और आंखें देखने से इनकार कर चुकी थीं। उन्हें देखकर हसन के अब्बा घबरा उठे और दोनो हाथों से थामकर उन्हे पलंग पर ले आए। बोले, "आज आप इतनी सर्दी में क्यों उठे?"

दादा ने कुछ नही सुना और लडखडाते हुए कहा, "अनवर, तुमने अभी किसका नाम लिया था? कौन आया है?"

''कोई नहीं, अब्बा!'' हसन के अब्बा अनवर ने शांति से जवाब दिया, ''यहां तो हसन के साथी शर्मा साहब बैठे हैं।''

''नहीं अनवर, मैने अच्छी तरह सुना है, तुम उसका नाम ले रहे थे।''

डॉक्टर शर्मा एक अजीब भूलभुलैया मे फंस गए थे। वे कभी हसन की ओर देखते, कभी अब्बा को और कभी बाबा को। पर उनकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। हसन चुपचाप जेब में हाथ डाले बाबा पर नजर गडाए हुए था। उसके मुख पर अब थकान नहीं थी, बल्कि एक गहरे दर्द ने उसे परेशान कर दिया था। इसके खिलाफ, उसके अब्बा की नफरत गहरी होती जा रही थी और बाहर हवा उसी तेजी से सर पटक रही थी। अनवर ने अब्बा को आराम से सहेजकर पलग पर लिटा दिया और फिर धीरे-धीरे चारों ओर से कंबल ढकने लगे।

दादा उसी तरह बोले, ''अनवर, तू बोलता क्यों नहीं?''

''अब्बा ''

''हां, वह कहां है? तू उसका नाम क्यों ले रहा था?''

अनवर की आवाज कुछ लड़खडाई, उन्होंने कहा, ''अब्बा, वह यहा नहीं आया।''

''तो...?''

''अस्पताल मे है।''

दादा की आवाज एकाएक और भी दर्दनाक हो उठी, ''क्या ..क्या कहा . अस्पताल में? . क्यों.. ?''

जब हसन से नहीं रहा गया, तो आगे बढ़कर उसने कहा, ''हां दादा, कानपुर वाले रामप्रसाद अस्पताल में पडे है, जख्मी हो गए थे, लेकिन अब बेहतर हैं।''

सुनकर दादा ने कंबल को दूर फेंक दिया और लडखड़ाते हुए बोले, ''रामप्रसाद जख्मी हो गया . कैसे हुआ किसने किया. ?''

''शहर में जो दगा हो रहा है, उसी में. .''

''मुसलमानों ने उसे मारा!'' दादा ने अब सब कुछ समझकर कहा, और क्षण-भर के लिए ऐसे हो गए जैसे प्राणों ने साथ छोड दिया हो। फिर उनकी आखों मे आंसू बहने लगे। आवाज भर्रा गई। बोले, ''हसन, उसे मुसलमानों ने मार डाला और तुमने मुझे बताया भी नहीं, तुमने.. ''

''दादा, मै उनको जानता नहीं था।''

''पर तूने कहा, वह अभी जिंदा है?''

''हां, दादा!''

''अस्पताल में?''

''हां, दादा!''

''तो हसन, मेरे बच्चे!'' उन्होने उठने की कोशिश करते हुए कहा, ''तू मुझे

उसके पास ले चल, मैं एक बार उसे देखूगा, वह मेरा बेटा है, मेरा बड़ा बेटा

कहते-कहते दादा फूट-फूटकर रोने लगे। उनसे उठा नही गया। कटे हुए पेड़ की तरह वही लुढ़क गए।

अनवर ने उन्हें देखा और पुकार उठे. "हसन! जल्दी करो अब्बा को गश आ गया है।"

हसन न कांपा, न घबराया। आगे बढकर उसने अलमारी में से दवा निकाली और उसे प्याले में डालते-डालते बोला, "शर्मा, क्या तुम इंजेक्शन तैयार नही कर दोगे?"

"जरूर कर दूगा।" शर्मा जो अब समझ गया था, बोला और उठकर स्प्रिट से सुई साफ करने लगा। हसन ने दवा बाबा के गले में डाली। फिर पुकारा "दादा!"

कोई आवाज नही।

"दादा आ. "

अनवर ने पुकारा, "अब्बा. !"

धीरे-धीरे उनको होश आया। होठ फडफडाए। बोले, "कहां है वह? मेरा बेटा.. मेरा बेटा ..!"

"अब्बा. !"

"मैं उसके पास जाऊगा।"

हसन ने कान के पास मुह ले जाकर धीरे से कहा, "अभी चलते है, दादा! आप जरा अपने को संभालिए तो "

उन्होंने उसी तरह कांपते हुए कहा, "मैं होश में हूं, मेरे बच्चे! मैं उसके पास जाऊंगा, आखिर वह मेरा बेटा है, कोई गैर नहीं। मैं मुसलमान हूं और वह हिंदू! वह मुझसे, मेरे बच्चों से नफरत करता है, पर पर वह भी मेरा बच्चा है। मैं उससे नफरत नहीं करता। हसन .हसन !"

"हां, दादा!"

"हसन! मैं उससे पूछूंगा, मै मुसलमान हो गया तो क्या हुआ, हमारा बाप-बेटे का नाता तो नहीं टूट सकता! आखिर उसकी रगो में अब भी मेरा खून बहता है, इतना ही जितना अनवर की रगो मे बहता है, शायद ज्यादा. ."

उनकी आवाज फिर धीमी पड रही थी। वह रो-रो उठते थे। दोनों डॉक्टर उनके ऊपर झुके हुए थे और अनवर ने उनकी नाडी सभाल रखी थी।

बाहर अधेरा बढा आ रहा था और हवा शांत पड रही थी। अंदर बेगम आखों में आसू भरे. दुखी दिल से चाय लिए बैठी थी और वह चाय न जाने कब की ठंडी होकर काली पड गई थी।

